

फरवरी 2014

₹ 10

आजकल

1945 से प्रकाशित

साहित्य और संस्कृति का मासिक



निर्भार

फूलों के लिए मत जाओ हाथ में पत्थर लेकर
पत्थर फेंकना ही तय कर लिया है तो फल की करो प्रतीक्षा
फूल डालियों को नहीं झुकाते और ना ही टूट पड़ते हैं पत्थरों पर
कोमल साथी जो इंतज़ार करते हैं प्रेमिल स्पर्श का
बरसते हैं आंचलों में
और पाते हैं सबसे मधुर फल निर्भार होने का।

जब ठग पक जाता है

जिसने ठग किया उसे भी कभी अफ़सोस अपने शिकारों के लिए
शुरू में रहता है, कभी-कभी तो श्रद्धा भी मां ने कहा था
फिर पक जाता है घड़ा और नहीं रखता मतलब
जल के स्वाद से।

नदी को इंतज़ार करने दो

आओ नदी को लांघती हुई आओ
पांव रखो तो सख़्त मिट्टी भी कर उठे छल-छल
एक देह नदी के आसमान को चीरती आए
घोलते रस पवन के प्रवाह में
और फिर लौटो तो नहीं
इंतज़ार करने दो नदी को
जैसे मैं करता रहा इंतज़ार
आखिर उसके जल में मेरी आंख का जल भी है शामिल।

बस प्रेम सरल

मैंने भूख के मामूलीपन से तुम्हें प्यार किया
प्यास की सरलता से
फूलों की निर्भार भव्यता चाहा मैंने प्यार में
काजल का अचूक पैनापन
मैं वृक्ष की तरह होना चाहता था स्थिर और स्मृतिमुक्त
मैंने तुम्हें प्यार किया और अपने होने के जल की पांखों से उठ रहे
सारे स्वर फेंक दिए
तुम्हारे होने की कोमल बांसुरी के लिए।

प्रार्थना

जो पांव कट जाते हैं वे भी शामिल रहते हैं यात्रा में,
कट गए हिस्सों से देखो तो दुनिया और साफ़ दिखती है
नक्शों की लकीरें और गहरी

दर्शनियां जितने आते हैं मरियल या मोटाया हुआ
पुजारी तो बस उन्हें प्रसाद देता है
किसी-किसी को ही पहचानता जिससे रिश्ते लेन-देन के,
मगर प्रवेशद्वार पर बैठा भिखारी जानता है सबकी खूबी, सबके ऐब
प्रार्थना करो कि यह शाप न मिले कि
सारे अंग साबूत
मगर जब जल में उतरों तो लगे नहा लिया बहुत देर
और शरीर को अज्ञात ही रह जाए जल का स्पर्श

दूसरा कोना

जिस भाषा में मेरे नाम का मतलब कुत्ता होता है
वो भाषा भी सीखूंगा
हो सकता है उस भाषा में मेरे दोस्त के नाम का मतलब हंस हो
न भी हो तो
हंस के लिए कोई तो शब्द होगा ही
कोई शब्द होगा सुंदर के लिए
कोई शब्द रोटी के लिए
प्यार के लिए और पृथ्वी के लिए
क्यों न करूं परिक्रमा जीवन की अन्य रथ पर हो सवार।

बुहारन

पंडाल उठा लिया गया, कुर्सियां हटा ली गईं
खंभे उखाड़ लिए गए
बचे दो-चार
सारे पत्तल चुन लिए गए
सारे मजूर चले गए, थके थे
बाकी सब भी चले गए, सब बड़े थे
कुछ पत्ते गिड़े हुए, पत्तलों से टूटे जूठन से गंदे
तुझे बुहारना ये पत्ते, रात गिर रही।

स्थापित 1945

इस अंक में

लेख

आजकल

वर्ष : 69; अंक : 10; पूर्णांक : 832
फरवरी 2014; माघ-फाल्गुन 1935

संपादक

कैलाश दहिया

फरहत परवीन

आवरण मञ्चा : निशांत पटेल

आवरण : मानस रंजन जेना की पेंटिंग

इस अंक के रेखाचित्र: सिद्धेश्वर

संपादकीय पत्र व्यवहार :

संपादक

आजकल : प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 120, सूचना भवन

सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड,

नई दिल्ली-110003

फोन : 2436 2915

ई-मेल : ajkalhindi@gmail.com

website :

www.publicationsdivision.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन) :

बी. के. मीणा

सदस्यता शुल्क :

वार्षिक : 100 रुपये; दो वर्ष : 180 रुपये; तीन वर्ष : 250

रुपये

विदेशों में (हवाई डाक से)

एक वर्ष : पड़ोसी देश : 530 रुपये

शेष विश्व : 730 रुपये

सदस्यता संबंधी पूछताछ :

सूर्यकांत शर्मा

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लॉक-4, लेवल-7, रामकृष्णपुरम्,

नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207

ई-मेल : pdjuicir@gmail.com

टाइपसेट : ज्योति लेजर टाइप सेटिंग

6. राजेंद्र जी के बहाने 'आजकल' के दिन
9. निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिकता
13. मौलाना आज़ाद पत्रकार के रूप में
18. गुज़ल में भाषा का प्रश्न
21. सर्जनशीलता ईश्वरीय वरदान है
(एन. चन्द्रशेखरन नायर से साक्षात्कार)
25. हिंदी की पहली कला पत्रिका
29. मधुबनी चित्रकला की प्रकाशपुंज
35. समकालीन हिंदी तथा मराठी कविता
38. लाठी (व्यंग्य)
41. कथक की रायगढ़ शैली
(पं. रामलाल से साक्षात्कार)

कहानी

16. सहारे की छड़ी
32. वैतरणी
40. लघुकथाएं
45. दो लघुकथाएं

कविता/गीत

- 26-27. नाज़िम हिक्मत की कविताएं
अनुवाद :
44. छह गीत

46. समीक्षा

परित्राण का एक मंत्र है
पारंपरिक लोक-परंपराओं का उपयोग
जीवन-जगत की प्रतिछवियां
हरियाणा के लोकगीतों का दस्तावेज़
घटनाओं की अभिव्यक्ति का नायाब अंदाज़
सांस्कृतिक अस्मिता का आईना है ढोल

आवरण II : कविताएं : मनोज कुमार झा

आवरण III : तीन कविताएं : प्रदीप कुमार निम्बडिया

दो गुज़लें : ज़हीर कुरेशी

पंकज बिष्ट

आशा शर्मा

रहमान मुसव्विर

ज्ञानप्रकाश विवेक

राजेन्द्र परदेसी

शुकदेव श्रोत्रिय

चंद्र मोहन मिश्र

भाऊसाहेब नवनाथ नवले

सुधीर निगम

चित्रा शर्मा

विपुल ज्वाला प्रसाद

विनोद कुमार

देवांशु वत्स

शकुन्तला कालरा

चंद्रबली सिंह

यशवंत वीरोदय

अजयशंकर मिश्र

ज्योति चौधरी

विमल शर्मा

रामफल चहल

सीमा ओझा

लीना

हमारे विक्रय केंद्र : नई दिल्ली: सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, दूरभाष : 011-24367260; **संलग्नक:** खल नं. 1, दूसरी मंजिल, केंद्रीय भवन, अलीगंज, दूरभाष : 0522-2225456; कोलकाता: 8, एम्प्लेमेंट ईस्ट, दूरभाष : 33-22488030; पटना: विहार रा. सह. बैंक बिल्डिंग, अशोक गजपथ, दूरभाष : 0612-2683407; मुंबई : 701 वी-विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन बेलापुर, नवी मुंबई, दूरभाष : 9522-27570689; **बंगलौर :** एफ विंग, केंद्रीय सदन, कोयमंगला दूरभाष : 0860-25537244; **इंदौर:** ब्लॉक-4, प्रथम तन, गुरुकुल कॉम्प्लेक्स, एम.जे. मार्ग, नामपल्ली; दूरभाष : 0440-24605383; **चेन्नई :** राजाजी भवन, वेस्ट नगर, दूरभाष : 044-24947673; **तिरुवनंतपुरम :** गवर्मेट प्रेस कनिक्ट; दूरभाष : 041-2330650

प्रसंगवश...

“मौलाना आज़ाद के साथ राष्ट्रीय आंदोलन में कार्य करने के अवसर मुझे 1920 से लगातार मिलते रहे हैं। इस्लाम के विषय में उनकी विद्वता का कोई सानी नहीं है। वह अरबी के भी प्रकांड पंडित हैं। उनकी राष्ट्रीयता की भावना भी उतनी ही निर्विवाद है, जितनी कि इस्लाम में उनकी आस्था।”

—महात्मा गांधी-18 मई, 1940

महात्मा गांधी के उपर्युक्त कथन ने मौलाना आज़ाद के संपूर्ण व्यक्तित्व को एक खुली किताब की तरह प्रस्तुत कर दिया है। महान स्वतंत्रता सेनानी और प्रतिष्ठित शिक्षाविद् मौलाना आज़ाद के लोकप्रिय उर्दू साप्ताहिक ‘अल-हिलाल’ को जहां 100 वर्ष पूरे हो चुके हैं वहीं मौलाना आज़ाद की 125वीं जयंती भी मनाई जा रही है। जब ‘अल-हिलाल’ का पहला अंक (1 जून, 1912) निकला, उस समय उनकी आयु मात्र 24 वर्ष की थी। ‘अल-हिलाल’ बुद्धिजीवी वर्ग में बहुत लोकप्रिय हुई। कुछ समय बाद अत्यंत सफल और प्रगतिशील पत्रकारिता का जीवन छोड़कर मौलाना खिलाफत आंदोलन में पहुंच गए और तत्पश्चात् राष्ट्रीय आंदोलन में कूद पड़े। 35 वर्ष की आयु में भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के अध्यक्ष बने। शांत, सौम्य व्यवहार वाले मौलाना आज़ाद की लौह दृढ़ता ने उन्हें बुनियादी सिद्धांतों से कभी पीछे हटने नहीं दिया।

एक स्थान पर वह स्वयं कहते हैं—

“मैंने कभी भी किसी दूसरे का अनुसरण करने की कोशिश नहीं की, बल्कि अपने लिए खुद ही रास्ता ईजाद किया और अपने कदमों के निशान छोड़ता गया उनके लिए जो मेरे पीछे आने वाले थे।”

यह महत्वपूर्ण बात है कि रुढ़िवादी धार्मिक व्यक्ति और प्राचीन प्रणाली में शिक्षित होते हुए भी वे अखंड भारत की विचारधारा से अभिन्न रूप से जुड़े हुए थे। वह जीवन के अंतिम समय तक हिंदू-मुस्लिम एकता के प्रबल समर्थक रहे। प्रस्तुत है मौलाना आज़ाद पर विशेष लेख।

जिस प्रकार हिंदी साहित्य का क्षेत्र असीमित है उसी प्रकार मराठी साहित्य विशेषकर मराठी काव्य में उत्कृष्ट एवं कालजयी कृतियों का एक अद्भुत भंडार है। इसी विषय पर प्रकाश डाल रहा है इस अंक में सम्मिलित आलेख।

मधुबनी चित्रकला की प्रकाशपुंज पद्मश्री महासुंदरी देवी का नाम आज देश में ही नहीं अपितु विदेशों में भी अपना प्रभुत्व रखता है। उन्होंने मधुबनी चित्रकला की विभिन्न विधाओं को एक नया आयाम दिया है। इस विधा के प्रचार-प्रसार और कला के प्रति समर्पण के लिए महासुंदरी देवी का नाम सर्वविदित है। अनेकों सम्मान, पुरस्कार से विभूषित कला-स्तंभ महासुंदरी देवी ने एक साधारण सरल कलाकार के रूप में अपना एक ऐसा स्थान बनाया है जो चिरस्मरणीय रहेगा। श्रद्धांजलि स्वरूप प्रस्तुत है उन पर विशेष लेख।

नाज़िम हिकमत का नाम बीसवीं शताब्दी में न सिर्फ़ तुर्की कवि के रूप में बल्कि दुनिया के महानतम कवियों में शुमार होता है। उनकी कविताओं का प्रो. चन्द्रबली सिंह ने सुंदर अंदाज़ में अनुवाद किया है जो स्वयं वरिष्ठ साहित्यकार, प्रतिष्ठित अनुवादक और समालोचक रहे हैं।

इन सबके अतिरिक्त हर बार की तरह ही मर्मस्पर्शी कहानियां, कविताएं इस अंक की शोभा बढ़ा रहे हैं। वसंत ऋतु का स्वागत ‘निराला’ की पंक्तियों के साथ—

सखि, वसंत आया,
भरा हर्ष बन के मन,
नवोत्कर्ष छाया!



प्रहारात्मक टिप्पणी

● 'आजकल' के अक्टूबर अंक से मुखातिब हूं। 'चौरी चौरा' विद्रोह की अंतः प्रक्रिया में काया-प्रवेश करके सुभाष चंद्र कुशवाहा ने बुनियादी तथ्यों को उजागर किया है। आलेख के गुजरते हुए वाजिव तथ्यों की हकीकतबयानी अपनी पूरी पारदर्शिता के साथ उजागर हो जाती है। इस आलेख के पूर्व 'चौरी चौरा' विद्रोह से संबद्ध जितने भी आलेख नज़र से गुज़रे हैं इतनी स-सवूत किसी ने भी जानकारी नहीं प्रस्तुत की है। इस आलेख की ऐतिहासिक संबद्धता के लिए कुशवाहा जी को साधुवाद! दिनेश चन्द्र अग्रवाल की कला-दृष्टि में आंग्ल चित्रकारों की कला-कृति मूल्यांकन परक है। जी. एन. देवी का भाषा-विमर्श नई जानकारीयों से समन्वित है। मंटो की रचनाशीलता पर नरेंद्र मोहन की बातचीत काफी प्रभावशाली है। असलम परवेज़ ने जिस ऊंचाई से सवालात को नरेंद्र मोहन के सामने रखा है उसी दक्षता से नरेंद्र मोहन ने उत्तरित किया है। एक सवाल के उत्तर में परवेज़ असलम से नरेंद्र मोहन का यह कहना 'मंटो अगर आज सचमुच हमारे बीच आ गए और उन्होंने अपने अफ़सानों द्वारा समाज का पर्दाफ़ाश करना

शुरू कर दिया तो क्या उनके अफ़सानों को बरदाश्त किया जाएगा?' समाज की सांस्कृतिक स्थितियों पर प्रकरांतर से यह एक प्रहारात्मक टिप्पणी है।

अशोक भाटिया की चारों लघुकथाएं 'आजकल' के स्तर लायक नहीं हैं। लघुकथा के सूत्र इसमें कहीं नहीं हैं। अंबर जोशी की दोनों ही गज़लें कथ्य और शिल्प में दमदार हैं। अंबर जोशी की दूसरी गज़ल पढ़कर मुनव्वर राना की मकबूल गज़ल का शेर 'भटकती है हवस दिन-रात सोने की दुकानों में/ ग़रीबी कान छिदवाती है तिनका डाल देती है।' याद आ गया। अपने कथा और शिल्प में 'अंबर एकदम अलग नज़रिया रखते हैं। अजय कुमार पांडेय और पल्लवी प्रकाश की समकालीन कविताएं मर्मस्पर्शी हैं। मदन केवलिया का व्यंग्य सुभता है और संपादकों की वाजिव कथासिंस करता है। उषा यादव की औपन्यासिक कृति 'स्वांग' पर वेदप्रकाश अमिताभ की टिप्पणी पुस्तक की आंतरिक सूत्रात्मकता से जोड़ती है। अमिताभ जी ने पुस्तक संदर्भ में यह कहकर "संप्रेषण सक्षम भाषा, नूतन कथ्य और सहज आखाद्य अभिव्यंजना की संलिष्टता से समृद्ध यह उपन्यास उषा यादव का उपन्यास-यात्रा का नया उल्लेखनीय पड़ाव है और इनकी नवोन्मेषणशालिनी प्रज्ञा को प्रमाणित करता है।" उपन्यास और लेखिका के रचनात्मक कद की आईनादारी कर दी है।

—मधुर नज़्मी, मऊ (उ.प्र.)

अत्यंत सराहनीय कदम

● 5 सितंबर 2013 को 'आजकल' में प्रकाशनार्थ भेजी गई

मेरी कविताओं पर मात्र पंद्रह दिनों के भीतर ही संलग्न पोस्टकार्ड पर आपका त्वरित उत्तर पाकर बहुत खुशी हुई थी। अब यह संपादकीय विनम्रता दुर्लभ चीज हो गई है। छोटी से छोटी और बड़ी-से-बड़ी पत्रिकाओं के संपादक अब रचनाओं पर अपना निर्णय देना अथवा समय पर इस बाबत कोई सूचना देना आवश्यक नहीं समझते। ऐसे में रचनाकारों के प्रति आपका यह जिम्मेदारीपूर्ण व्यवहार अत्यंत सराहनीय है।

मैं पिछले चार वर्षों से अहमदाबाद में हूं। यहां हिंदी पत्रिकाओं की उपलब्धता सहज नहीं है। इधर दशहरे में जब मैं अपने गृह जिला दुमका गया तो वहां कई वर्षों बाद 'आजकल' का अक्टूबर 2013 अंक खरीदा। आप अंक बेहतर निकाल रहे हैं। पत्रिका का कलेवर भी बेहतर हुआ है। संपादकीय भी आप बढ़िया लिख रहे हैं।

— राहुल राजेश, अहमदाबाद (गुजरात)

सकारात्मक प्रभाव

● 'आजकल' का अक्टूबर 2013 अंक में निलांशु रंजन की कहानी 'साँरी, ये रॉन्ग नम्बर है', आज के दौर में काफी प्रासंगिक है, रिश्तों की बाजारीकरण के बढ़ते दबाव को झेलने के लिए आज समाज अभिशप्त है, ऐसे में अनुराधा के फिसलते कदम को ठहराव मिल जाना, उसे अपनी गलतियों का समय से पहले अहसास हो जाना, स्त्रियों की समाज में उसकी सहभागिता को बढ़ाती है, मृग मरीचिका की शिकार होने के बाद की जो वेदना है, उस दंश को सहने से बच गई

है अनुराधा, इस कहानी का सकारात्मक प्रभाव हमारे समाज पर जरूर पड़ेगा। इस रचना के लिए हम निलांशु रंजन एवं 'आजकल' साहित्य एवं संस्कृति की मासिक पत्रिका कविता-कहानी आजकल में छपती रहे।

—संतोष प्रसाद, पाटलिपुत्र फिल्मस एंड, टेलीविजन एकेडमी, पटना (बिहार)

मार्मिक प्रस्तुति

● 'आजकल' का अक्टूबर अंक अपनी श्रेष्ठ सामग्री के कारण पाठक-समूह को आह्लादित करता है। अजय कुमार पाण्डेय की काव्य-रचनाओं में प्रवाहमान हृदयधारा, गहन कल्पनाशीलता एवं संप्रेषणीयता की गरिमामयी उपस्थिति ने कविताओं को वाग्विलास के संजाल से मुक्त करा लिया है। कवि-कथन सत्य ही है कि अच्छी औरतें आदमी होने की शर्तों से निर्वासित होती हैं। कथा-साहित्य में निलांशु रंजन की कथा-कृति 'साँरी, ये रॉन्ग नंबर है' एक मार्मिक प्रस्तुति है। धारदार भाषा के प्रतिष्ठित हस्ताक्षर मदन केवलिया ने व्यंग्य-रचना 'अनावश्यक पत्र-व्यवहार न करें' में संपादक-लेखक के खींचतान वाले रिश्ते को तेज़ाबी पानी में डूबो-डूबोकर जांचा-परखा है। अंक की संपूर्ण रचनाएं पठनीय हैं।

—प्रभात कुमार, नालंदा (बिहार)

मूल्य खोजती कहानियां

● 'आजकल' का अक्टूबर अंक कहानी-कला की दृष्टि से अधिक परिपक्व लगा। यदि अनंत कुमार सिंह की कहानी 'बासठ वर्ष की लंबी कविता' को छोड़ दिया जाए तो निलांशु रंजन की 'साँरी, ये रॉन्ग नम्बर है' और आरती स्मित

। 'कागज़ का टुकड़ा' कथावस्तु के नज़रिये से कसी हुई कहानियाँ हैं।

नीलांशु रंजन की कहानी 'सॉरी, ये रॉन्ना नंबर है' को पढ़ते हुए मन्नु भंडारी की कहानी 'यही सच है' सहज ही याद हो आई। दोनों कहानियों में जो सबसे बड़ा अंतर दिख पड़ता है वह यह कि 'यही सच है' की दीपा स्मृतियों में विचरण करते बहुत घबराई हुई रहती है। उसे इस बात का भय बना रहता है कि अपने पूर्व प्रेमी का सामना होते ही वह अपने मनोभावों पर नियंत्रण रख पाएगी या नहीं? इसी मानसिक जद्दो-जहद और स्मृतियों में वहते हुए अंत में वह अपने वैवाहिक जीवन में लौट आती है जबकि नीलांशु रंजन की कहानी 'सॉरी, ये रॉन्ना नंबर है' की अनुराधा घर छोड़ने से बस थोड़ी देर पूर्व अपने पति प्रशांत से जब अपने प्रेमी निखिल की तुलना करती है तो वह स्वयं के विश्वास को प्रशांत के पास अधिक सुरक्षित पाती है। हालाँकि, निखिल का इरादा भी अनुराधा को धोखा देना नहीं था, इसलिए वह उसे भ्रम में न रखकर सीधे भूल जाने को कहकर गांव चला जाता है। यही कारण है कि अनुराधा के मन में उपजा निखिल का प्रेम विवाह पश्चात भी जीवित रहता है और अनुकूल वातावरण पाकर पल्लवित होने लगता है तथा अंत में उसे असमंजस की स्थिति में डाल देता है।

बतौर कहानीकार यह उल्लेखनीय है कि 'यही सच है' एक स्त्री की कहानी है जबकि 'सॉरी, ये रॉन्ना नंबर है' एक पुरुष-लेखक की। इससे भी अधिक आश्चर्य में यह बात डालती है कि मन्नु भंडारी की दीपा मानसिक रूप से अनुराधा के आगे कमज़ोर दिखती है। अनुभव की प्रामाणिकता के आधार पर तो

दीपा को खारिज नहीं किया जा सकता लेकिन अनुराधा स्वयं निखिल को त्यागती है जो कि वर्तमान समय में न केवल स्त्री के आत्मसम्मान की रक्षा करता है बल्कि उसे उसके अधिकारों के प्रति भी जाग्रत करता है। आधुनिक नारी की अस्मिता के लिए यह अपरिहार्य शर्त है।

इसके अतिरिक्त आरती स्मित की कहानी 'कागज़ का टुकड़ा' बाल मनोविज्ञान को बहुत करीब से छूती है। कहानी में जिस तरह माँ के द्वारा 'अंशु' की उपेक्षा कर 'अंकु' को महत्त्व दिया जाता है क्योंकि वह छोटा है, बाल मन पर एक बड़ा कुठाराघात है। ध्यातव्य है कि समकालीन समय में जहाँ सारा जीवन अस्त-व्यस्त हो गया है वहीं घर में अपने बच्चों से बढ़ता हुए वाचिक और मानसिक अंतर इस समाज को अंदर से खोखला कर देगा। यही कारण है कि अंशु समय से पहले ही बड़ा हो गया है। अंत में बॉल लौटाते हुए बुआ को उसका यह पत्र मिलना कि 'अब मुझे इसकी जरूरत नहीं। मैं कभी किसी के साथ नहीं खेलूंगा' उसके बचपन के समाप्त होने और मानसिक रूप से अतिशीघ्र व्यस्क होते जाने का संकेत है।

इस प्रकार 'आजकल' का अक्टूबर अंक दो बेहतरीन कहानी देने वाला साबित होता है। संपादकों और कहानीकारों को इसके लिए बधाई।

—प्रेमपाल, जे. एन. यू., नई दिल्ली

उत्तम सामग्री

● डा. मदन केवलिया का 'अनावश्यक पत्र-व्यवहार न करें' व्यंग्य न होकर आज की हकीकत है। धीरे-धीरे लेखक विरल होकर संन्यास ले लें तो आश्चर्य नहीं। पहले 15 दिन से डेढ़ माह के बीच उत्तर आ जाते थे। आपका

संपादकीय नैतिकता के प्रति जागरूकता के लिए सजग करने वाला है। 'चौरी चौरा...' (सुभाष चंद्र), कुशवाहा 'कंपनी काल ...' (दिनेश चंद्र अग्रवाल) समेत सारी सामग्री उत्तम है।

—हरदर्शन सहगल, बीकानेर

ऐतिहासिक जानकारी

● अक्टूबर का अंक प्राप्त हुआ। यूं तो हम बचपन ही से 'चौरी-चौरा' के बारे में पढ़ते-सुनते आ रहे हैं किंतु पहली बार एक सिलसिलेवार तथ्यपरक जानकारी सुभाष चंद्र कुशवाहा के लेख से समस्त पाठकों को ज्ञात हुई है।

देशवासियों को लाल मुहम्मद, नज़र अली और अब्दुल्ला चूड़िहार जैसे देशभक्तों से सीख लेनी चाहिए। इस ऐतिहासिक जानकारी हेतु सुभाष जी साधुवाद के पात्र हैं।

—पुरुषोत्तम पाटील, जलगांव

कई गुढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता अंक

● 'आजकल' का अक्टूबर अंक में 'चौरी चौरा' कांड पर आधारित लेख—'चौरी चौरा विद्रोह और स्वाधीनता संग्राम' कई गुढ़ रहस्यों को उद्घाटित करता नज़र आया, 'आदमी और बरसात' कविता काफी अच्छी लगी। मेरा एक सुझाव है कि पत्रिका में वर्ष में तीसरा या छठा अंक विशेषांक के रूप में निकले।

—मुन्ना साह, नेहरु विहार, नई दिल्ली

विविधता का सागर

● 'आजकल' का हर अंक विविधता का वह सागर है जहाँ भारतीय संस्कृति के मिलन का विहंगम दृश्य देखने को मिलता है। अक्टूबर अंक में आरती स्मित की कहानी 'कागज़ का टुकड़ा' प्रकाशित हुई। अंशु की भूख पर

नारी के मातृत्व का सिहर जाना एक अनोखा दृश्य उत्पन्न करता है।

पुरुष कभी हिंसक हो ही नहीं सकता, आवश्यकता इस बात की है इसके हर पहलू का संपूर्ण मनोवैज्ञानिक विश्लेषण कर नारी जग में आज पुरुष विरोधी स्वर का मुखर होना पाश्चात्य फैशन का हिस्सा होता जा रहा है। इस कहानी ने नारी-चरित्र के आत्म-अवलोकन करने का एक नया आयाम प्रदान किया है।

'मदर इंडिया' फिल्म में मां ने बेटे की हत्या कर दी लेकिन बेटे के द्वारा प्रतिहिंसा में अपनी गांव की बेटी की इज्जत को ताड़-ताड़ नहीं करने दिया।

सवाल यह कौंध रहा है कि आज के समाज का विरजू बन रहा है तो इसका दोष किसके माथे पर जाएगा। नारी के गर्भ में जंजीर से जकड़ा हुआ पुरुष को क्या सिर्फ कानून में संशोधन कर इसे गुलाम बना दिया जाएगा या कोई दूसरी 'मदर इंडिया' बन समाज की रहनुमाई करेगी?

—कृष्णानंद भारती, मुंगेर (बिहार)

ऐतिहासिक जानकारी

● अक्टूबर अंक पढ़ा। ऐतिहासिक जानकारी प्राप्त हुई 'चौरी-चौरा विद्रोह' लेख से। कहानी 'बारह वर्ष की लंबी कविता' एवं 'सॉरी ये रॉन्ना नंबर है' दोनों अच्छी लगी। साथ ही अजय कुमार पाण्डेय की कविताएं समाज दर्शन रही। मदन केवलिया की व्यंग्य रचना पढ़कर बहुत आनंदित हुआ। सामान्य व नवोदित लेखकों की परेशानियों एवं उनके दुखड़ों को बहुत ही खूबी से व्यंग्यात्मक ढंग से चित्रण किया गया है। यह बिकूल यथार्थ है कि आजकल न पत्र-पत्रिकाएं मिलती हैं और न ही उनका पारिश्रमिक।

यह भी सत्य है कि सामान्य लेखक सभी पत्रिकाएं नहीं खरीद सकता और उसको बाजार में भी उपलब्ध नहीं होती।

मदन केवलिया के इस लेख से मैं सहमत हूं। इसी वजह से मैं आवश्यक समझ कर आवश्यक पत्र-व्यवहार कर रहा हूं।

—सत्यनारायण विश्वकर्मा,
मऊ (उ.प्र.)

खूबसूरत अंक

● अमर शहीदों की चेतना को समर्पित 'आजकल' का अक्टूबर अंक 'चौरी चौरा' की याद दिला गया। संपादकीय गुण और गरिमा को साथे हुए, प्रेरणीय है। कहानी 'कामुज का टुकड़ा' भा गई। अजय कुमार पाण्डेय की पहली गज़ल मन को छूती है।

'चौरी चौरा' का विद्रोह एक ऐतिहासिक दस्तावेज़ का आंकन स्वाधीनता संग्राम से किया जा सकता है। देशभक्ति की भावना को हृदय से नमन क्योंकि उत्तर प्रदेश का खूनी चर्चा और बसत्या बजा-बजाकर गाए जाने वाली कविता में देश की आज़ादी के तराने आज भी गूंजते हैं। जन आंदोलन, जनजागरण और चाहत, ने ही देश के तिरंगे की आन-बान-शान को बनाए रखा। यह स्मृति उसी में से एक की निशानी है। उसे क्षीण नहीं होने देना चाहिए।

देशज भाषाएं कभी मिटती नहीं, जी.एन. देवी के लेख ने जोड़ने का कार्य किया है। व्यंग्य हल्का है। हिंदी सिनेमा के पृष्ठों से यादें बटोरकर पेश करने में आप सभी हुनरदार हैं। कुल मिलाकर अंक खूबसूरत है। उपयोगी और कई बार पलटने वाला है।

— अवधेश, ब्रह्मपुरी, सीतापुर
(उ.प्र.)

ऐतिहासिक दस्तावेज़

● 'आजकल' के जितने अंक हम पढ़ते हैं उतनी बार साहित्य-संस्कृति के संगम में अवगाहन का आनंद हमें मिलता है। कभी कथा, कभी कविता तो कभी ऐतिहासिक दस्तावेज़ इसकी जान होते हैं। अक्टूबर अंक में आमने-सामने छपी हुई स्त्री-विमर्श संबंधी अजय कुमार पाण्डेय और पल्लवी प्रकाश की कविताएं क्रमशः 'अच्छी औरतें' तथा 'बोलती हुई स्त्री' दोनों पर मनुस्मृति का प्रतिबिंब प्रतीत हुआ।

आदि सृष्टि में महर्षि मनु महाराज कृत 'मनुस्मृति' को स्त्री-विमर्श करते समय प्रायः कोसा जाता है। सत्य यह है कि मूल ग्रंथ में कालांतर स्त्री-विरुद्ध प्रक्षिप्त मनमरजी से जोड़कर इसे विकृत किया गया है। तृतीय अध्याय के श्लोक 56, 59, 60 और 62 में प्रथम बार नारी को इतना महिमामंडित करते हुए उसके सम्मान को असाधारण ऊंचाई प्रदान की गई है

यत्र नार्यस्तु पूज्यन्ते रमन्ते तत्र
देवताः

यत्रै तास्तु न पूज्यन्ते
सर्वास्तत्राफलाः क्रियाः (3/56)

तब से अब तक स्त्री की स्थिति में बहुत कुछ बदला है, अच्छा, खराब दोनों। तथापि अजय कुमार पाण्डेय का यह कहना कि स्त्री, आदमी होने की शर्तों से निर्वासित है या पल्लवी प्रकाश का यह चित्रण कि स्त्री, (पुरुष) के पांव में गड़ा चुभता हुआ कांटा, गले में फंसी हड्डी...आदि है तो यह ज्यादाती है।

जी हां, अब बोलती हुई स्त्री ही अच्छी स्त्री है। स्त्री बोल रही है, खूब बोले, बोलती हुई स्त्री का राज जरूर आने वाला है, हम नैराश्यजीवी या इतने नकारात्मक न हों।

—रामचन्द्र मिश्र, आई.आई.टी.
(मुंबई)

चौरी-चौरा विद्रोह

● ऐतिहासिक तथ्यों पर आधारित चौरी-चौरा विद्रोह और स्वाधीनता संग्राम अंग्रेजों और रजवाड़ों की काली करतूतों का पदार्फाश करता है और बताए गए भारतीय किसानों की दुर्दशा की सच्ची दास्तान है। 'देशज भाषाएं' : अस्तित्व का संकट' भाषा प्रेमियों के लिए एक संजीदा रिपोर्ट है। हमारी सरकार के पास देशज भाषाओं की खोज-खबर लेने के समयाभाव है। धर्म और संस्कृति के मकड़जाल में फंसी भारतीय नारी दुर्दशा झेल रही है। उसे बलात्कार, बेरोज़गारी, उत्पीड़न और भुखमरी का सामना करना पड़ रहा है। इस सच्चाई के विरुद्ध हमारी सरकार स्त्रियों की सुरक्षा और मर्यादा का दम भरती है। उक्त कविता इन्हीं सच्चाइयों का कच्चा-चिट्ठा है। 'अनावश्यक पत्र-व्यवहार न करें' साहित्यिक पत्र-पत्रिकाओं को भेजी जाने वाली रचनाओं के बारे में संपादकों की ओर से रचनाकारों को निराश करने के लिए एक पुराना रिवाज है। उक्त व्यंग्य वास्तविकता की सच्ची तस्वीर है। शेष सभी रचनाएं पठनीय एवं संग्रहणीय हैं।

—दानबहादुर सिंह, रीवा (म. प्र.)

विद्वतापूर्ण साहित्य

● 'आजकल' अक्टूबर अंक का अवगाहन किया। 'चौरी चौरा विद्रोह' तथा 'कम्पनी काल के ब्रिटिश चित्तेरों' ... आलेखों तथा मुखपृष्ठ पर शहीद स्मारक 'चौरी चौरा' के रंगीन चित्र से माह के सांस्कृतिक चिंतन की अनुभूति हुई। क्या हिंदी सिनेमा की पहली संगीतकार जोड़ी की चर्चा सचमुच इतनी प्रासंगिक और उपादेय हो गई है? कहानी, साक्षात्कार और

समीक्षा में विद्वतापूर्ण साहित्य समाहित है जो पत्रिका के स्वरूप और संस्कार के सर्वथा अनुकूल है। 'कविता' स्तंभ के अंतर्गत अनुकांत विचार कविताओं को ही अधिक महत्त्व एवं स्थान दिया जा रहा है और पद्य एवं छंदबद्ध रचनाओं को साहित्य से निष्कासित किया जा रहा है। ऐसी प्रवृत्ति हिंदी साहित्य के लिए शुभ नहीं। हां, तुकांत कविता के नाम पर उन गज़लों को अधिक सम्मान प्राप्त है जो उर्दू की शुद्ध-शैली से ही मोहग्रस्त है।

'नवगीत' की भांति इनमें नई हिंदी गज़ल-सा संस्कार क्यों नहीं दिख सकता? 'अम्बर' जोशी की दूसरी गज़ल में 'गुरीबी में तो मां भूखी....पंक्ति होते हुए भी अंतिम पंक्ति में 'कभी ये जिंदगी भूखा ... में 'निवाला डाल देती है' जैसा एक जैसा तुकांत और समान भावबिंब का क्या औचित्य है? पहली गज़ल भी उर्दू शिल्प के तुकांत पर आधारित है। रचना प्रकाशन की कसौटी रचना होनी चाहिए रचनाकार का नाम नहीं। 'आजकल' जैसी स्तरीय सम्मानित पत्रिका को अपने गुणात्मक मानकों पर अडिग रहना चाहिए।

—गौरी शंकर वैश्य 'विनम्र',
आदित्य नगर, लखनऊ (उ.प्र.)

प्रेरणादायक कविताएं

● लाइब्रेरी में पिछले कई महीनों से 'आजकल' के अंकों का अध्ययन कर रहा था। सीमित समय व घरेलू काम-काज की वजह से ध्यान भटका रहता था। इस महीने अक्टूबर अंक को घर लाकर इत्मीनान से पढ़ा। सभी कविताएं अच्छी लगीं। खासकर अच्छी 'औरतें' व 'बोलती हुई स्त्री' कविताएं प्रेरणादायक हैं।

पृष्ठ 39 पर जारी

राजेंद्र जी के बहाने 'आजकल' के दिन

राजेंद्र जी से मेरा संपर्क 1974-75 के आसपास से हो चुका था। वह अत्यंत मिलनसार और खुले आदमी थे। छोटे-बड़े का भेदभाव जैसा उनमें कहीं नहीं था। इसके बावजूद मैंने उनसे कभी कहानी देने का आग्रह नहीं किया। सच यह था कि उन्होंने कहानी लिखना लगभग बंद कर दिया था। 'आजकल' के लिए वह विशेष तौर पर कहानी लिखते, यह संभव नहीं था। पर उनसे कहानी पर बात अवश्य की जा सकती थी। सितंबर-अक्टूबर, 1977 में हमने 'आजकल' का कहानी विशेषांक निकाला और राजेंद्र जी से लेख का अनुरोध किया, बता रहे हैं **पंकज बिष्ट**

'आजकल' से मेरा संबंध सन् 1970 के आसपास से शुरू होकर 1998 में स्वेच्छिक सेवा निवृत्त होने तक कुल 16 वर्ष का रहा। बीच के 14 वर्ष मैंने सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के अन्य विभागों में काम किया। 'आजकल' के कार्यकाल के दौरान मेरा हर तरह के लेखकों से, जिनमें हिंदी के अलावा विभिन्न प्रादेशिक भाषाओं और विदेशों के भी लेखक थे, संपर्क हुआ।

अगर देवेंद्र सत्यार्थी के संपादन काल को छोड़ दें, जिसमें उस दौर का लगभग हर बड़े से बड़ा लेखक छपा है, तो कोई भी संपादक, उस तरह से, अपने दौर के प्रमुख लेखकों को पत्रिका में नहीं जोड़ पाया। पत्रिका के लगभग 70 वर्ष के इतिहास में सत्यार्थी 'आजकल' के सबसे प्रभावशाली और बड़े संपादक रहे, इसमें शायद ही दो राय हों। उनके कार्यकाल के दौरान मैथिलीशरण गुप्त से लेकर सुमित्रानंदन पंत, महादेवी वर्मा, दिनकर, निराला, वच्चन, हजारीप्रसाद द्विवेदी तक हर कोई छपा है। तब यह भावना नहीं थी कि हम सरकारी पत्रिका में नहीं लिखेंगे। बाद में सरकार और लेखकों के बीच एक सचेत विभाजन पैदा हुआ, कारण क्या हो सकते हैं, निश्चित तौर पर कुछ कहा नहीं जा सकता पर यह जरूर है कि कई रचनाकार इस भावना से सजग रहते थे कि वे लेखक हैं और सरकारी पत्र-पत्रिकाओं में लिखना उन्हें दोगुने दर्जे का रचनाकार सिद्ध कर सकता है।

इस तरह का छुआछूत मैंने अपने सेवाकाल में कई बार अप्रत्यक्ष रूप से महसूस किया था पर 1979 में जो हुआ वह खासा आंखें खोलनेवाला था।

उस वर्ष अज्ञेय को भारतीय ज्ञानपीठ मिला था। मैं सहायक संपादक था। संपादक थे भागीरथ पांडे। तब ज्ञानपीठ पुरस्कार का महत्व कुछ और ही था—पैसे के लिहाज से भी और प्रतिष्ठा के लिहाज से भी। हमने निर्णय किया कि अज्ञेय का एक साक्षात्कार किया जाए और उन पर विशेष सामग्री छापी जाए। मैं एक मित्र के माध्यम से उन तक पहुंचा और एक साक्षात्कार के लिए निवेदन किया। पर उन्होंने साफ शब्दों में, यह कहते हुए मना कर दिया कि मैं सरकारी पत्रिकाओं में नहीं लिखता हूं। साक्षात्कार भी नहीं दूंगा। हमने उन्हें मनाने की हरचंद कोशिश की। यहां तक कहा कि वह जो भी कहेंगे वह बिना कॉमा-फुलस्टाप के छपेगा।



वह जनता पार्टी की सरकार का दौर था और अज्ञेय उसके समर्थक थे। पर वह नहीं माने। जब मुझे लगा वह टस्स से मस्स नहीं होनेवाले हैं तो मुझ से रहा नहीं गया। मैंने पूरी धृष्टता के साथ उनसे वह कह दिया जिसकी उन्हें उम्मीद नहीं थी। मैंने कहा आप सरकारी पत्रिकाओं में तो नहीं लिखते हैं पर सरकारी रेडियो और टेलीविजन में तो जाते हैं। दोनों में क्या अंतर है? उन्होंने मेरी बात का कोई जवाब नहीं दिया।

उसके बाद उन्होंने चरम मौन धारण कर लिया था और हमें विदा तक नहीं कहा।

यह सच भी था। तब तक निजी चैनल नहीं आए थे और अज्ञेय जी कई साहित्यिक कार्यक्रमों में दूरदर्शन पर दिखलाई देते थे। वह रेडियो वार्ताओं में भी अक्सर भाग लेते थे पर सबसे बड़ी बात यह थी कि वह औपनिवेशिक शासन के दौरान ऑल इंडिया रेडियो और बाद में आकाशवाणी में कार्य कर चुके थे।

यह अलग किस्सा है कि अंततः किस तरह से अज्ञेय को मनवाया गया और फिर जून 1979 में उन पर एक भव्य विशेषांक निकला जिसमें उनका एक रंगीन फोटो आवरण पर था। साथ में था उनका साक्षात्कार और दो कविताएं भी। वह पहला मौका था जब 'आजकल' ने किसी लेखक को आवरण पर छपा था।

पर इस नकचढ़ेपन में अज्ञेय अकेले नहीं थे। निर्मल वर्मा, श्रीकांत वर्मा, कमलेश्वर, मोहन राकेश, रघुवीर सहाय जैसे कई लेखक हैं जिन से 'आजकल' के लिए रचना लेना एक असंभव काम था। इसका एक कारण यह भी था कि उस दौरान व्यावसायिक पत्रिकाओं का बोलबाला था और 'धर्मयुग', 'साप्ताहिक हिंदुस्तान' और 'सारिका' की प्रसार संख्या और

लोकप्रियता के कारण लेखकों की पहली पसंद वही पत्रिकाएं हुआ करती थीं। वहां से उन्हें पारिश्रमिक भी अच्छा मिलता था। सरकारी पत्रिकाओं के प्रति पूर्वाग्रह कई बार एक बहाना लगता था।

एक कारण यह भी था कि इनमें से कई लेखकों की छवियां इतनी बड़ी हो चुकी थीं कि अक्सर संपादक उनके व्यवहार को समझते हुए उनसे संपर्क ही नहीं करते थे। कुछ स्वयं संपादक थे। जैसे कि धर्मवीर भारती और कमलेश्वर। भारती से मेरा कभी संपर्क नहीं हो पाया पर कमलेश्वर इस मामले में खासे सहज आदमी थे। स्वयं 'सारिका' के संपादक होने और बंबईया फिल्मों से सक्रिय रूप से जुड़े होने के कारण उनके लिए बाहर लिखने का समय निकाल पाना संभव ही नहीं था। शायद इस झिझक में हम उनसे कभी कुछ मांग ही नहीं पाते थे। पर मुझे याद है 71 या 72 में उन्होंने 'आजकल' के लिए कुछ लिखा था। यह उनसे श्रवण कुमार के निजी संबंधों के कारण संभव हो पाया था।

मैं एक असें तक इस भ्रम का शिकार रहा कि राजेंद्र यादव भी इसी श्रेणी में शामिल हैं। राजेंद्र जी उन दिनों अक्षर प्रकाशन चला रहे थे और फ्रीलांसिंग करते थे। मुझे नहीं मालूम श्रवण कुमार ने उनसे रचनाएं मांगीं भी या नहीं? इसका एक संभावित कारण यह हो सकता है कि वह स्वयं कमलेश्वर के 'सारिका' के माध्यम से चलाए जानेवाले समानांतर आंदोलन से निकट से जुड़े थे पर राजेंद्र यादव कमलेश्वर के उस आंदोलन में साथ नहीं थे। यह अहं का मामला भी हो सकता है और असहमति का भी, जिसका उल्लेख कमलेश्वर पर इधर प्रकाशित एक लेख में मन्नु भंडारी ने विस्तार से किया भी है। पर 'आजकल' में 1977 में प्रकाशित राजेंद्र यादव के साक्षात्कार में भी इसका पर्याप्त संकेत है।

इसके बाद मैंने जिन दो संपादकों के साथ काम किया उनमें केशव गोपाल निगम, स्वयं कहानीकार थे। चूंकि रिटायरमेंट के नजदीक थे, उनकी रुचि सिमटती जा रही थी। वे किसी झंझट में न पड़कर शांति से अपने बचे दो-एक साल निकाल लेना चाहते थे। बड़े लेखकों से वह इसलिए भी डरते थे कि न जाने कब क्या लिख दें और उस पर अड़ जाएं। ऐसा होना असंभव भी नहीं था। यह मैंने बाद में अपने अनुभवों से सीखा। पहली बार एक वरिष्ठ लेखक ने मुझे स्पष्ट धमकी दी कि वह मेरी शिकायत मंत्री से करेंगे और दूसरी बार तो बाकायदा शिकायत हो ही गई। यह बात और है कि मैं बच गया।

निगम जी के बाद भगीरथ पांडे ने 'आजकल' संभाला। पांडे जी जितने मस्तमौला थे उतने ही जुझारू भी थे। उनके चार वर्ष रह गए थे। वह अपने रिटायरमेंट से डरे हुए नहीं थे बल्कि उसका सामना करने की तैयारी कर रहे थे और उन्होंने उसी दौरान एलएलबी की सांध्यकालीन कक्षाओं में दाखिला लिया हुआ था। वह दिखने में निहायत परंपरावादी लगते थे—धोती-कुर्ते के साथ वह लंबी चोटी रखते थे और अक्सर टीका-चंदन भी लगाए होते थे। पर वह भीतर से उदारवादी थे। उनके कारण यह लाभ हुआ कि मुझे निडर होकर काम करने की खुली छूट मिल गई। उनके साथ चार वर्ष काम करना सुखद अनुभव रहा। भगीरथ पांडे के रिटायरमेंट के साथ ही मुझे भी 'योजना' अंग्रेजी में भेज दिया गया। वहां से मैं आकाशवाणी और फिल्म डिवीजन होता हुआ लगभग दस वर्ष बाद संपादक के रूप में फिर से प्रकाशन विभाग लौटा और सन् 1993 में 'आजकल' के संपादक का कार्यभार संभाला।

अब तक दुनिया काफी बदल चुकी थी। मेरे दो उपन्यास छप चुके थे। लेखक के रूप में मैं कई लोगों को जान चुका था। बड़ी बात यह है कि मैंने सबसे महत्वपूर्ण बात, जो किसी भी संपादक के लिए जरूरी है, सीख ली थी कि अपने विषय के हर बड़े लेखक से रचना मांगी जानी चाहिए। वह दे या न दे, यह उसका मसला है। पर रचना मांगना हमारा कर्तव्य और एक मामले में अधिकार भी है।

मैं बात राजेंद्र यादव की कर रहा था। जहां तक राजेंद्र जी का सवाल है उनसे मेरा संपर्क 1974-75 के आसपास से हो चुका था। वह अत्यंत मिलनसार और खुले आदमी थे। छोटे-बड़े का भेदभाव जैसा उनमें कहीं नहीं था। इसके बावजूद मैंने उनसे कभी कहानी देने का आग्रह नहीं किया। सच यह था कि उन्होंने कहानी लिखना लगभग बंद कर दिया था। 'आजकल' के लिए वह विशेष तौर पर कहानी लिखते, यह संभव नहीं था। पर उनसे कहानी पर बात अवश्य की जा सकती थी। सितंबर-अक्टूबर, 1977 में हमने 'आजकल' का कहानी विशेषांक निकाला और राजेंद्र जी से लेख का अनुरोध किया। उन्होंने जो रचना दी वह साक्षात्कार था जिसे उन्होंने 'अपने-आप से एक बातचीत' घोषित किया। 'लेखन : एक राजनीतिक परिदृश्य' शीर्षक से छपे इस साक्षात्कार के साथ हमने 'अपने-आप से एक बातचीत' भी छपा। यानी राजेंद्र यादव ने इस साक्षात्कार में खुद से पूछे सवालों के जवाब दिए थे। यह तथाकथित साक्षात्कार स्पष्ट है कि आपातकाल के बाद की स्थितियों की पृष्ठभूमि में था, इस पर भी यह मूलतः साहित्यिक है और खासा महत्वपूर्ण है।

पर इसके पीछे एक कथा है।

जैसा कि मैंने ऊपर इसे 'तथाकथित साक्षात्कार' कहा है वह अकारण नहीं है। मुझे लगता है चूंकि मौका है, उसे भविष्य के लिए सही कर दिया जाना चाहिए। निश्चय ही राजेंद्र जी और नई कहानी आंदोलन पर कई लोग काम करेंगे और कर रहे होंगे। संभव है इस लेख को भी कहानी पर उनके विचारों के संदर्भ में कोई इस्तेमाल करे या उनकी जीवनी लिखने के लिए इस्तेमाल करे। कहानी कुछ इस प्रकार है—

उन दिनों मेरी कहानीकार योगेश गुप्त से खासी निकटता थी। वह अक्षर प्रकाशन के लिए काम करते थे। तब मैंने उनके माध्यम से राजेंद्र यादव से बात की थी। मेरे साथ तब उनके संबंध बहुत सीमित थे। योगेश गुप्त के और राजेंद्र जी के बीच उन दिनों अच्छी मित्रता थी। राजेंद्र जी लिखने को तो तैयार हो गए पर संभवतः लिख नहीं पाए। मेरे लगातार दबाव बनाए रहने के कारण उन्होंने तरीका यह निकाला कि योगेश गुप्त उनसे प्रश्न पूछेंगे और वह जवाब देंगे। योगेश जी ने ही वह साक्षात्कार लिया और लिखा था, पर राजेंद्र जी ने उसे अंतिम रूप दिया तथा वह उन्हीं के नाम से, संभवतः मेरा मान रखने के लिए, उस रूप में छपा था। इस तरह यह वास्तव में उनकी 'अपने-आप से बातचीत' नहीं है बल्कि योगेश गुप्त का लिया साक्षात्कार है। यह बात मुझे स्वयं योगेश गुप्त ने ही बतलाई थी। पर इससे कोई ज्यादा फर्क नहीं पड़ता क्योंकि बातें राजेंद्र जी की ही हैं और वे महत्वपूर्ण हैं। गौर फरमाइए—

“...हजारों साल से हमें यही मुगलता, नशा या सपना दिया है कि लेखक बड़ी विलक्षण और महान चीज है। अतः उसे उसी हिसाब से वैशिष्ट्य मिलना चाहिए। मगर अब वह उस महानता को आज के संदर्भ में देखता है तो पाता है कि उससे हजार-लाख गुना प्रभावशाली राजनीतिक

है, पैसेवाला है जो राजनीति को चलाता है। यानी पूंजीपति और राजनीतिक के बीच लेखक को अपनी स्थिति विल्कुल एक फालतू और बाहरी सरहदों पर फेंके गए आदमी की लगी। प्रभावशाली होने के लिए एक ही इलाज उसके पास था कि वह इनके साथ जुड़ने की कोशिश करे। स्थिति की विषमता के कारण यह जुड़ना बराबरी के धरातल पर नहीं, उसकी कृपा पर, उसके घर में जबर्दस्ती मेहमान बने आदमी की तरह हुआ। जितना लेखक ने प्रभावशाली बनने या उससे मान्यता लेने की कोशिश की, उतना ही अपनी धुरी से उखड़ता गया। उसकी ट्रेजेडी यह रही कि वह स्वतंत्र भी होना चाहता था और सत्ता पर निर्भर भी करता था। सीधा रास्ता तो यह था कि वह उसी तरह जुड़ जाता जैसे राष्ट्रकवि होते थे। लेकिन हमारे लेखक को सत्ता से सुविधाएं तो सारी चाहिए थीं, साथ ही स्वतंत्र चिंतक का गौरव, दंभ भी अपने लिए चाहिए था। सारी गड़बड़ी यहीं है। अंदरूनी रूप में सत्ता से जुड़ने की कोशिश, ऊपरी रूप से स्वतंत्र और विद्रोही। दो नावों में पैर रखने की कलाकारी। भाषा के स्तर पर सत्ता के विरोधियों के बीच सम्मान और प्रभाव और संपर्कों के स्तर पर सत्ता से सुविधाएं। इसका सबसे अधिक खामियाजा भुगतना पड़ा लेखन और लेखकीय इंटिग्रिटी को।”

‘आजकल’ की स्वर्ण जयंती के अवसर पर जब हम पूर्व प्रकाशित रचनाओं का एक चयन निकालने के लिए पुराने अंक खंगाल रहे थे तो उसमें राजेंद्र जी की कुछ और रचनाएं भी देखने को मिलीं। इससे मेरा यह भ्रम तो टूट ही गया कि मैंने पहली बार उनसे कोई रचना ली, फिर चाहे वह थोड़ा वक्र तरीके से ही क्यों न छपी हो।

राजेंद्र जी के लेखन की शुरुआत आजादी के तत्काल बाद की कही जा सकती है। उनकी पहली कहानी 18 वर्ष की उम्र में ‘चांद’ में 1947 में प्रकाशित हुई थी। तब तक ‘आजकल’ को निकले सिर्फ दो वर्ष हुए थे। इस तरह देखा जाए तो रचनात्मक दौर के अपने लगभग सात दशक में उनकी सात रचनाएं भी ‘आजकल’ में प्रकाशित नहीं हुईं। यहां यह रेखांकित करना जरूरी है कि वह अपने अंतिम समय तक सक्रिय रहे थे। सामान्यतः जैसा कि बड़े कहानी लेखकों के साथ होता रहा है कि जब भी वे आग्रह पर या लिहाज में कुछ देते भी थे तो कहानियां मुश्किल से ही देते थे। दूसरी समस्या यह भी थी कि उन दिनों पारिश्रमिक भी बहुत कम था। एक मामले में लेखकों को दोष भी नहीं दिया जा सकता। कहानियां कोई भी लेखक, फिर चाहे वह कितना भी सिद्धहस्त क्यों न हो, साल में दो-तीन से ज्यादा नहीं लिख पाता है। इसलिए उनको या तो अच्छा पारिश्रमिक मिलना चाहिए या पाठक। ‘आजकल’ से इनमें से कोई भी पर्याप्त नहीं मिल पाता था। मैंने अपनी नौकरी के अंतिम दिनों में कोशिश की थी कि प्रकाशन विभाग की पत्रिकाओं का पारिश्रमिक व्यावसायिक पत्रिकाओं से ज्यादा हो जाए, पर वह प्रयत्न असफल ही नहीं हुआ बल्कि मेरे लिए काफी कटु साबित हुआ।

आजादी के बाद साठ के दशक के दौर तक व्यावसायिक पत्रिकाओं का वैसा बोलबाला नहीं था जैसा अगले दस दशक तक रहा। उस दौरान ‘आजकल’ का साहित्यिक हलकों में विशेष महत्व था। फिर सत्यार्थी जी (1948-1954) ने अपनी प्रतिभा से पत्रिका को जिस धरातल पर पहुंचा दिया था, उसका असर धीरे-धीरे कम हुआ। जैसे उसके बाद ‘आजकल’ की कमान चंद्रगुप्त विद्यालंकार (1955-1963) के हाथ में आई और वह भी जाने-माने साहित्यकार थे। मोहन राकेश के बाद वह ‘सारिका’ के

संपादक बने थे। राजेंद्र जी की पहली कहानी ‘आजकल’ में चंद्रगुप्त जी के कार्यकाल में ही दिसंबर 1959 में छपी। नाम था ‘मंज़ाक’। उनकी अगली कहानी ज्यादा महत्वपूर्ण है। यह ठीक दो साल बाद दिसंबर 1961 के अंक में थी। ‘छोटे-छोटे ताजमहल’ शीर्षक—यह कहानी उनकी महत्वपूर्ण और चर्चित कहानियों में से है। इसके अलावा उनकी एक कविता भी उसी दौर में ‘आजकल’ में छपी है। ये दोनों ही कहानियां खासी लंबी थीं इसलिए इन्हें स्वर्ण जयंती विशेषांक में नहीं छापा जा सका। इसलिए उनकी उपस्थिति दर्ज करने के लिए इनकी जगह मजबूरी में कविता ‘किनारा और लहरें’ शामिल की गई। साथ में उनका एक खूबसूरत फोटो भी था।

मैं ‘आजकल’ में बतौर संपादक 1993 में लौटा। इस बीच राजेंद्र जी से मेरी निकटता काफी बढ़ चुकी थी। जैसी भी हो कमोबेश एक लेखक के तौर पर भी मेरी एक पहचान बन चुकी थी और नए ‘हंस’ के साथ एक लेखक के तौर पर मैं जुड़ा हुआ भी था। मैंने उनसे रचना मांगी। अब उनके लिए मेरे आग्रह को टालना थोड़ा मुश्किल हो चुका था। अंततः जो लेख उन्होंने हमें दिया वह फरवरी, 1996 में छपा, शीर्षक था ‘खुद कहीं अनुवाद हैं हम’।

इस महत्वपूर्ण लेख में उन्होंने एक जगह लिखा है—“एक भाषा में महसूस करना और दूसरी में लिखना एक दूसरी अविश्वसनीयता को जन्म देना है। पिछले दो सौ सालों से अंग्रेजी ने जिस तरह हमारी मानसिकता को गढ़ा है वह लगभग हमारा संस्कार बन गई है। प्रायः हर स्थिति में पहला शब्द अंग्रेजी का आता है। उसका सटीक पर्यायवाची प्रायः नहीं मिलता। या तो सीधे उसे ही रखना पड़ता है या संदर्भ के अनुसार उसकी व्याख्या करनी होती है। यह कठिनाई सबसे अधिक वैचारिक या अमूर्त विषयों को लेकर होती है—वहां हमारे जीने और सोचने की दो स्पष्ट अलग भाषाएं हैं। यह तय करना मुश्किल हो जाता है कि हम किस का किस भाषा में अनुवाद कर रहे हैं।”

यहां याद दिलाना जरूरी नहीं है कि राजेंद्र जी ने कई महत्वपूर्ण अनुवाद भी किए हैं जिनमें मिखाइल लर्मंतोव का उपन्यास ‘ए हीरो आफ अवर टाइम’ और अल्बेयर कामू का ‘द स्ट्रेंजर’ (या द आउट साइडर) प्रमुख हैं। संयोगवश यह वर्ष कामू की जन्मशती का भी है। इसके अलावा उन्होंने इवान तुर्गेनेव और चेखव के भी अनुवाद किए। रेखांकन योग्य यह है कि इनमें से कोई भी लेखक मूल अंग्रेजी का नहीं है पर अनुवाद अंग्रेजी से किए गए हैं।

पर इस बीच अचानक एक घटना घटी जिसने ‘हंस’ यानी राजेंद्र यादव को थोड़ा आत्मरक्षा की मुद्रा में डाल दिया। मई-जून, 1995 में ‘आजकल’ ने स्वर्ण जयंती वर्ष के पूरा होने के अवसर पर ‘युवा हिंदी लेखन विशेषांक’ निकाला। इसमें एक लघु उपन्यास छपा है जिसका शीर्षक है ‘मध्यांतर’। इसके लेखक थे संजय सहाय। तब तक संजय की एक-आध ही कहानी छपी थी। यहां फिर से एक स्वीकारोक्ति की जरूरत है। मैं उन्हें न तो व्यक्तिगत रूप से जानता था और न ही मैंने उनकी तब तक कोई रचना ही पढ़ी थी। मैं वास्तव में श्रृंजय की रचना चाहता था, जो उन दिनों अपनी कहानी ‘गर्म कोट’ के कारण चर्चा में थे। ‘हंस’ से जिसने मुझे पता दिया वह संजय और श्रृंजय में अंतर नहीं कर पाया। नतीजा यह हुआ कि श्रृंजय की जगह मुझे संजय सहाय का पता मिल

गया। मैंने उन्हें जो पहला पत्र लिखा वह भी श्रृंजय सहाय के उद्बोधन से ही था। हमें जो रचना मिली उसे लेखक ने कहानी ही कहा था। लघु उपन्यास उसे मैंने बना दिया। उसका कारण यह मोह था कि विशेषांक में सभी प्रमुख विधाएं आ जाएं। कहानी थी भी खासी लंबी और 'आजकल' के 20 पृष्ठों में आई। संजय सहाय की इस रचना ने धूम मचा दी। यह कहानी निश्चय ही हिंदी की चुनींदा कहानियों में से है जो नैतिकता के सवाल को इतनी बारीकी, संवेदनशीलता और विजन से प्रस्तुत करती है।

इस पर राजेंद्र यादव का फोन आया। मैं सुन कर दंग रह गया कि यह कहानी पहले उनके पास प्रकाशनार्थ गई थी। पर उन्होंने अस्वीकृति का जो कारण बताया उसने मुझे थोड़ा बुझा दिया। बोले यह कहानी संजय की लिखी नहीं है बल्कि दूसरे लेखक से लिखवाई गई है। दूसरे शब्दों में, मैं ठगा गया हूँ।

संभलने में मुझे थोड़ा समय लगा, पर संभलते ही मैंने कहा, यह मेरा सरोकार नहीं है तब तक जब तक कि जिस लेखक का आप घोस्ट राइटर के रूप में नाम ले रहे हैं वह नहीं कहता कि यह मेरी लिखी है या कोई और लिखकर ऐसा दावा नहीं करता। दूसरा, उसकी शैली को मैं जानता हूँ, यह उससे मेल नहीं खाती है।

संजय सहाय आज 'हंस' के संपादक हैं।

सन् 1997 के शुरू में मुझे एक अनजान लेखक की रचना मिली। लाइनो वाले रजिस्टर पर हाथ की लिखी कहानी कुछ नहीं तो पचास पृष्ठों की थी। पर उसका शीर्षक ऐसा आकर्षक था कि मैंने उसे मात्र असामान्य लंबी होने के कारण लौटाना उचित नहीं समझा। लेकिन व्यस्तता या आलस्य के कारण कहानी का पढ़ना रोज़ टलता गया और

वह मेरी मेज़ पर कम-से-कम छह महीने रखी रह गई। इस बीच कहानीकार ने यहां तक आग्रह कर दिया कि अगर आप नहीं छापना चाहते तो कृपया लौटा दें, पर मैंने व्यस्तता का बहाना कर कहानी नहीं लौटाई। मैं उसे एक बार पढ़ जरूर लेना चाहता था। कहीं-न-कहीं मेरी अंतश्चेतना में यह बात थी कि कहानी सामान्य नहीं है।

ख़ैर, जब मैंने उसे पढ़ा तो मैं सीट से उछल पड़ा। आश्चर्य हुआ कि लेखिका का नाम मेरी नज़र से पहले क्यों नहीं गुजरा? उसकी भाषा ही सही हुई नहीं थी बल्कि फॉर्म पर भी लेखक का पूरा नियंत्रण था। विषय की नवीनता और उसका निर्वहन अपने-आप में चकित करनेवाला था। इतनी लंबी कहानी पाठक को अंत तक बांधे रखती है। कहानी फरवरी-मार्च 1997 में छपी। नाम था 'कुल्हाड़ी गोदड़ और...'। लेखिका थीं, नीलिमा सिन्हा। अजीब इत्फाक था कि वह भी गया शहर की ही थीं, जहां के संजय सहाय हैं। कहानी 'आजकल' के 15 पृष्ठों में आई। यह भी खासी चर्चित हुई और इसे पहला 'रमाकांत स्मृति' पुरस्कार मिला। यह कहानी भी एक मामले में नैतिक सवाल के इर्द-गिर्द बुनी हुई है। अफ़सोस यह है कि लेखिका ने बहुत कम कहानियां लिखीं। उनका एक संग्रह आया पर उस पर नहीं के बराबर चर्चा हुई।

इस बार राजेंद्र जी ने कुछ नहीं कहा पर लेखिका ने जरूर बतलाया कि इस कहानी को 'हंस' ने लौटा दिया था। ऐसा भी नहीं है कि 'हंस' ने उन्हें छपा ही न हो। जहां तक मुझे याद पड़ता है, बाद में सन् 1999 या 2000 में नीलिमा सिन्हा की एक लंबी-सी कहानी राजेंद्र जी ने अवश्य प्रकाशित की। □

संपर्क : 98, कला विहार अपार्टमेंट, मयूर विहार, फेज -1, दिल्ली-110091

आजकल का ग्राहक बनें :

मैं आपकी पत्रिका *-----का □ एक वर्ष (100 रुपये)

□ दो वर्ष (180 रुपये) □ तीन वर्ष (250 रुपये) का ग्राहक बनना चाहता हूँ।

शुल्क का रुपये----- डिमांड ड्राफ्ट या भारतीय पोस्टल ऑर्डर, मनीऑर्डर
-----दिनांक-----संलग्न है।

हस्ताक्षर -----

नाम : -----

पता : -----

पिन : □□□□□□

● कृपया अपना चंदा डी.डी. या भारतीय पोस्टल ऑर्डर, मनीऑर्डर, अपर महा निदेशक (प्रभारी), प्रकाशन विभाग, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के नाम बनाएं।

● पत्रिका भेजने में, चंदा प्राप्त होने के बाद, आठ से दस सप्ताह का समय लगता है। कृपया इतने समय प्रतीक्षा करें।

● दिल्ली से प्रकाशित हमारी अन्य पत्रिकाएँ हैं : बाल भारती, आजकल (उर्दू), कुल्लुत्र (हिंदी व अंग्रेजी), योजना (हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू, पंजाबी व उड़िया)।

चंदा निम्न पते पर भेजें :

विज्ञापन एवं प्रसार व्यवस्थापक,
प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लॉक 4, लेवल-7,
रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

निर्मल वर्मा की कहानियों में आधुनिकता

निर्मल वर्मा की अधिकतर कहानियों में पाश्चात्य जीवन और वहां के वातावरण का चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय व्यक्ति को आधुनिक जीवन की जटिलताओं व समस्याओं के संपर्क में दिखाया है, बता रही हैं आशा शर्मा

निर्मल अपने नाम के अनुरूप ही निर्मल व्यक्तित्व के धनी थे। निर्मल वर्मा हिंदी लेखन परंपरा के प्रतीक पुरुष थे, जिनके जीवन में कर्म, चिंतन और आस्था का अपना विशिष्ट स्थान था। उनका ऐसा मानना था कि कला का मर्म जीवन का सत्य बन जाता है और आस्था की चुनौती जीवन की कसौटी और अपने जीवनकाल में गलत समझे जाना उसकी नियति है और बेदाग रहना उसका पुरस्कार। निर्मल वर्मा के हिस्से में ये दोनों ही बातें जीवनपर्यंत बनी रहीं। भारत में जन्मे निर्मल वर्मा बहुमुखी प्रतिभा के धनी कथाकार थे जिन पर भारतीय और पाश्चात्य का प्रभाव बराबर रहा। निर्मल वर्मा उन कहानीकारों में से हैं, जिनके लिए मानव संबंधों का उद्घाटन करना, मानवीय संवेदनशीलता का चित्रण करना एवं आज के युग बोध एवं भाव बोध का अंकन करना उतना महत्वपूर्ण नहीं है जितना तथाकथित 'आधुनिकता' के तत्वों की रक्षा करना, अनास्था एवं निष्क्रियता का स्वर उद्घोषित करना, पलायनवाद का प्रचार करना और प्रतिक्रियावादी तत्वों का आश्रय देना है। डॉ. नामवर सिंह के अनुसार, "निर्मल के साथ आधुनिक शब्द जुड़ा है। वह सही अर्थों में आधुनिक कथाकार है। संवेदना में भी, शिल्प में भी।"¹

स्वातंत्र्योत्तर काल निर्मल वर्मा की लेखकीय उपस्थिति से गौरवान्वित रहा। वह उन सफल रचनाकारों में थे जिन्होंने समाज की संवेदना, व्यक्तिगत पीड़ा और उसके जागरूक वैचारिक हस्तक्षेप के बीच एक सुंदर संतुलन का आदर्श प्रस्तुत किया। उनके लेखन का सबसे महत्वपूर्ण दशक, चेकोस्लोवाकिया के विदेशी परिवेश में बीता। अपने लेखन में उन्होंने न केवल मनुष्य के अंतर्मन की वेदनाओं को उकेरा बल्कि साथ ही साथ उनके संबंधों को बड़ी बारीकी के साथ अपने लेखन में जगह दी। व्यक्ति की सामाजिक, राजनीतिक भूमिका क्या होती है, साथ ही तेजी से बदलते आधुनिक समय में एक प्राचीन संस्कृति के वाहक के रूप में उसके आदर्शों की पीठिका कैसी हो, इन सब प्रश्नों को भी अपने कहानी साहित्य में विशिष्ट जगह दी।

निर्मल वर्मा की कहानियां विषयवस्तु की दृष्टि से उत्कृष्ट हैं। उन्होंने अपनी कहानियों में पाश्चात्य जीवन में व्याप्त एकांगीपन का चित्रण किया है जिसके कारण इनकी कहानियों में आधुनिकता की झलक

स्पष्ट दिखाई देती है। आधुनिकता की दृष्टि से विदेशी परिवेश हमारे भारतीय परिवेश से नितांत भिन्न है। अगर हम देखें तो विदेशी परिवेश का अर्थ है—पाश्चात्य सभ्यता। निर्मल इसलिए मानते हैं—“जब तक मैं उसे अन्य प्राणियों की तरह भोग नहीं लूंगा, वह मुझ से छूटेगा नहीं।”

निर्मल वर्मा की अधिकतर कहानियों में पाश्चात्य जीवन और वहां के वातावरण का चित्रण मिलता है। उन्होंने अपनी कहानियों में मध्यवर्गीय व्यक्ति को आधुनिक जीवन की जटिलताओं व समस्याओं के संपर्क में दिखाया है। पाश्चात्य जीवन की साफ झलक इनकी कहानियों में दिखाई देती है—“वर्षों विदेश में रहने के कारण मेरी कुछ कहानियों में शायद एक वीराने किस्म का ‘प्रवासीपन’ चला आया है—मुझे नहीं मालूम यह कहानियों को अच्छा बनाता है या बुरा। कुछ भी हो, इन्हें ‘विदेशी कहानियां’ कहना शायद ठीक न होगा।”²



निर्मल वर्मा भारतीय परिवेश को छोड़कर पश्चिम की ओर उन्मुख हुए क्योंकि उन्हें वहां आत्मसंतोष की प्राप्ति हुई, उन्होंने उस परिवेश को अपनी कहानियों का आधार बनाया और विदेशी परिवेश का ‘कुशल चितेरा’ नाम से प्रसिद्धि प्राप्त की। निर्मल वर्मा स्वयं यह स्वीकार नहीं करते की उनकी रचनाओं में किसी प्रकार का कोई विदेशी परिवेश है। एक भेंटकर्ता ने उनसे पूछा कि आपकी कहानियों और उपन्यासों में विदेशी रंग भरा पड़ा है, इसका कारण आपका विदेश भ्रमण है या कुछ और? तो निर्मल वर्मा उत्तर देते हैं, “मुझे विदेशी रंग का शब्द ऐसा ही अजीब जान पड़ता है जैसे आंचलिक कहानियों का ‘लोकल कलर’। मैंने अपने जीवन के बहुत से वर्ष यूरोप में बिताए हैं, उसका असर मेरी कहानियों पर पड़ा है,

लेकिन यदि मैं विदेश न भी जाता तो मेरी कहानियों में शायद कुछ ऐसा ही रहता, जिसे हिंदी आलोचक विदेशी मानते। मेरे विचार में एक औपनिवेशिक देश का लेखक स्वयं इस प्रभाव से मुक्त नहीं रह सकता। चाहे वह सारी जिंदगी अपने देश में क्यों न बिताए।”³

जहां भारतीय सांस्कृतिक परिवेश की सबसे बड़ी पहचान शील, लज्जा, सहृदयता, संयम, नैतिकता, पूजा-पाठ इत्यादि है, वहां पाश्चात्य सांस्कृतिक परिवेश का बोध हमें अनैतिकता, मुक्त-भाग, हिंसा, भाग-दौड़,

उत्तेजक संगीत, भड़कीली पोशाक तथा भदेसपन आदि से होता है। निर्मल वर्मा की सभी कहानियों में पश्चिमी सभ्यता के इन गुणों का परिवेशगत चित्रण मिलता है। निर्मल वर्मा की कहानियों में विदेशी परिवेश से अभिप्राय चेकोस्लोवाकिया प्राग, लंदन आदि देशों की सभ्यता एवं संस्कृति आदि से है। उनकी कहानियों में खुलापन अधिक है। “निर्मल का समस्त लेखन एक ही रचना है, एक ही रागिनी—किंतु केवल रागिनी वह इसलिए नहीं है कि न तो वह साधना किसी शास्त्रीय संगीतज्ञ की है, एकांत तपोसाधना और न वह अकृत्रिम और पोश है तो नाच के जोड़ों के लिए अशोक और ताज से छोटी श्रेणी के शराबघरों में बजती है। थोड़ी अभिजात है किंतु अज्ञेय के गद्य के भीतर जो एक अभोग-सा अभिजात्य है नारी देह को लेकर जो कल्पित सा सुख है—वह भी नहीं। यदि है तो वीयर का हल्का और गहरा सुख में इसे नाश भी कहूंगा।”⁴ निर्मल वर्मा की कहानियों में हर घटना में कहीं न कहीं विदेशी परिवेश नजर आता है। घटना चाहे दिल्ली की हो, चेकोस्लोवाकिया की हो, शिमला, इंग्लैंड, लंदन या फिर प्राग की क्यों न हो, सभी में एक जैसा परिवेश मिलता है। विदेशी परिवेश में रंगी इन कहानियों में पाठकों के लिए अंतर कर पाना मुश्किल हो जाता है।

निर्मल वर्मा की कहानियां विदेशी भावभूमि को लेकर लिखी गई हैं। उन्होंने अपने सृजन को विदेशी माहौल की खुशबू से सुवासित किया है। वैसे निर्मल वर्मा वैयक्तिक कहानीकार हैं। उन्होंने व्यक्तिगत प्रेम, यौन-चेतना व संबंध और उससे प्रभावित संबंधों, जीवन मूल्यों तथा आदर्शों का अंकन किया है। “उनकी अधिकांश कहानियां विदेशी परिवेश के जीवन में, बोदिका, चियंती, विदेशी शराब, पहाड़ों तथा जंगलों, नीली आंखों, भूरे बालों और हिमानी मौसम के साथ, विदेशी महिलाओं के आगोश में प्रेम का वर्णन विशेष रूप से मिलता है। उनकी दहलीज, अंतर, पिता और प्रेमी, पिछड़ी गर्मियों में, एक शुरुआत, जलती झाड़ी आदि हैं, जिनमें शारीरिक भूख तथा सौंदर्यता के चित्र हैं।”⁵ निर्मल ने अपनी कहानियों में आधुनिक परिवेश इस प्रकार निर्मित किया है कि पाठक पढ़ते-पढ़ते उसी परिवेश में पहुंच जाता है। उनकी कहानियों में वायलिन, गिटार, ऑर्केस्ट्रा, पियानो आदि के उत्तेजक स्वरों का वर्णन है। इन यंत्रों के भड़कीले सुरों पर कहानियों के पात्रों के कदम भी थिरकने लगते हैं। उनकी कहानियों में कहीं भी भारतीय वाद्ययंत्र वीणा, सितार, बांसुरी, शहनाई आदि जैसे भारतीय परिवेश का संगीत नहीं गूंजता है। ऑर्केस्ट्रा के प्रति निर्मल के पात्रों का विशेष मोह है। ‘पराए शहर’ का नायक ‘वेनिस’ के एक रेस्तरां के संगीत के बारे में बताता है कि वहां के लोग किस तरह संगीत के लिए खींचे चले आते हैं, “लोगों की एक बड़ी भीड़ ऑर्केस्ट्रा के आगे-पीछे जमा हो गई थी; जो लोग बाहर रेस्तरांओं की कुर्सियों पर बैठे थे, उन्होंने अपनी कुर्सियां ऑर्केस्ट्रा की तरफ मोड़ ली थी।”⁶ निर्मल की कहानियों में मौखिक संगीत की धुन भी पाठकों को अपनी ओर मोहित कर लेती है। इसका उदाहरण हमें ‘पराए शहर’ में कहानी की नायिका ‘जो आईदा’ का उन्माद गा रही थी, से मिलता है। “लड़की बीच स्क्वायर में गा रही थी। वह आईदा का एक आरिया (ओपेरा गीत) था, जो अरसा पहले प्राग में सुना था। उसका स्वर बहुत ऊपर जाकर तन जाता था और तब लगता था जैसे आतिशबाजी के अनार की तरह हवा में टूट जाएगा और उसके स्वर की रंग-बिरंगी चिपियां सारी भीड़ पर बिखर जाएंगी। लेकिन वह टूटता नहीं

था। सुर ऊपर जाकर गेहूं की बाली-सा नीचे झुक जाता था। नीचे जहां गर्म देहों से निकलती पसीने की गंध थी।”⁷

‘लवर्स’ कहानी का निंदी अपनी प्रेमिका के साथ कर्नॉटप्लेस के एक होटल में जाता है। वहां ऑर्केस्ट्रा शुरू होने से पहले ही बाहर आ जाना चाहता है लेकिन उसका मित्र जार्ज तथा उसकी फियान्सी उसे जाने नहीं देते। निंदी कहता है, “जार्ज ने मुझे देख लिया है, वह धीरे से इम स्टिक हवा में घुमाता है। गुडलक कहा और धीरे से आंख दबा दी।”⁸

प्रेम संबंधों पर आधारित कहानी ‘छुट्टियों के बाद’ में मार्था और उसकी सहेली की पेरिस यात्रा का वर्णन है। प्रस्तुत कहानी में मार्था के प्रेम संबंध का वर्णन किया गया है। “उसने बहुत कोमल झटके से लड़की का सिर अपने कंधे से हटा लिया, फिर उसके चेहरे को चूमा। हर जगह उसकी आंखों को, बालों को, गर्दन को, गर्दन के नीचे, ऊपर, उसके होंठ यात्रा करते हुए मार्था के मुंह पर टिक जाते।”⁹

‘पराए शहर’ कहानी में यौन संबंधों के बारे में बताया गया है। “इसके साथ जाओगे? उस लड़के ने फुस-फुसाकर कहा—सिर्फ पांच सौ लीरा...तुम पूरी रात इसके साथ रह सकते हो। वह मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर स्कर्ट पर रगड़ने लगी।”¹⁰ निर्मल की कहानियों की नायिकाएं बड़ी निर्लजता से व्यवहार करती हैं। ‘पराए शहर’ का नायक कहता है—वह मेरे पास आई। उसने मेरे बालों को छुआ।...फिर आंखों को...

— स्पीक इंग्लिश...? उसने पूछा। भीड़ में खड़े लोग हंसने लगे। किसी ने सिटी बजाई और अश्लील-सा इशारा किया। किंतु वह ऐसे खड़ी थी, जैसे वह आदमियों के बीच एक मकान हो। उसे भीड़ का कोई ख्याल नहीं था।”¹¹

‘लवर्स’ कहानी में कथई रंग का सूट पहने अर्धे उग्र का व्यक्ति अर्धनग्न गौर युवती में दिलचस्पी दिखाता है “उन्होंने पत्रिकाओं के ढेर से एक जर्द, पुरानी-फटी मैगजीन उठाई है। मैगजीन के कवर पर लेटी एक अर्धनग्न गौर युवती का चित्र है। वह यह चित्र दुकान पर बैठे लड़के को दिखाते हैं और आंख मारकर हंसते हैं।”¹² ‘अंतर’ कहानी में यौन संबंधों के बारे में बताया गया है। प्रस्तुत कहानी में यौन समस्या का वर्णन है। इस कहानी में लड़की गर्भवती है और वह अस्पताल में गर्भ गिराने के लिए आई है, उसका प्रेमी उससे मिलने आया और उसकी पसंद की साड़ी और दूसरी चीजें लाया है। वह गर्भ से मुक्ति पाकर अगली गर्मियों में घूमने का कार्यक्रम बनाते हैं। “मैंने कुछ चीजें यहां खरीद ली थीं—वह बारी-बारी से हर चीज को बैग से निकालकर बिस्तर पर रखने लगा—आइू और अन्नास के टिन, सलामी, फ्रेंच पनीर, लीपा का पैकेट”¹³

‘अमालिया’ कहानी यौन समस्या पर आधारित है। अमालिया लड़की के माध्यम से देह व्यापार की समस्या को उभारा गया है। टूरिस्ट अमालिया के ग्राहक बनते हैं। कहानी के अंत में उसका मानसिक परिवर्तन देखने को मिलता है, ब्राजीलियन के प्रति उसके अंदर भी आत्मीयता है, परंतु उसकी किसी मजबूरी ने उसे देह व्यापार करने वाली बना दिया है। “क्या तुम बार...? उसने रूमाल से नाक सिनकी, फिर धीरे से कहा, ‘हां’...लेकिन मुझे सब कुछ मालूम है। पहली बार अक्सर ऐसा हो जाता है, मैंने कहा।”¹⁴ इस कथन के माध्यम से निर्मल वर्मा ने पाश्चात्य संस्कृति का वर्णन किया है।

‘एक शुरुआत’ विदेशी परिवेश पर आधारित कहानी है। इस कहानी में समुद्री यात्रा का वर्णन किया गया है। कहानी में नायक द्वारा स्टीमर में बैठकर विदेशी यात्रा का वर्णन है परंतु इस यात्रा में कहानी के पात्र के मन में कई प्रश्नचिह्न उभर आते हैं। वह सोचता है मैं अपने देश में हजारों मील दूर यहां क्यों चला आया हूं? मेरे लिए यूरोप के क्या अर्थ रहे हैं? यूरोप की यह रात लेखक के जीवन की एक नई शुरुआत बन जाती है। “स्टीमर के यात्री डेक की कुर्सियों पर गुमसुम चुपचाप बैठे हैं। कुछ घड़ियों के बाद वे यूरोप के अलग-अलग कोने में खो जाएंगे। जब मैं लंदन आते समय पहली बार चैनल पार कर रहा था। वे गर्मियों के दिन थे और सब लोग यूरोप में छुट्टियां गुज़ार कर अपने-अपने घर लौट रहे थे।”¹

निर्मल की कहानियों का संपूर्ण वायुमंडल पव से निकलती शराब की सुगंध से महक जाता है। इनकी वर्णित कहानियों में प्रत्येक देश, प्रत्येक शहर, प्रत्येक प्रांत में ‘पव’ मिलता है। ऐसा लगता है मानो निर्मल के पात्रों का कोई घर नहीं। उनके पास एकमात्र ‘पव’ का सहारा है जहां वह आकर चैन की सांस लेते हैं। निर्मल के सभी पात्र, छोटे बड़े, युवा वृद्ध, स्त्री पुरुष, लड़के लड़कियां, धूम्रपान, शराब, बियर, सिगरेट, इत्यादि का सेवन करते हैं। इस बात का परिचय ‘डेढ़ इंच मुस्कान’ के बूढ़े शराबी की कहानी से मिलता है जो अंदर से दुखी है किंतु बाहर से प्रसन्न दिखाई देता है। उसकी पत्नी ने उसके साथ छल किया है, वह उसके साथ पत्नी की हैसियत से तो पेश आती है परंतु दूसरे लोगों के साथ मिलकर पेम्फलेट बेचती है। “... अगर आप बुरा न मानें तो मैं एक बियर और लूंगा। कुछ देर में सब बंद हो जाएगी और सारे शहर में सुबह तक एक बूंद भी दिखाई नहीं देगी। आप डरिए नहीं ... मैं पीने की अपनी सीमा जानता हूं...आदमी को जमीन से करीब डेढ़ इंच ऊपर उठ जाना।”¹⁵

‘छुट्टियों के बाद’ कहानी में निर्मल वर्मा ने विदेशी पात्र मार्था के माध्यम से विदेशी संस्कृति का वर्णन किया है। इसमें बताया गया है की विदेशों में नारी पात्र भी धूम्रपान, शराब, बियर इत्यादि का सेवन करते हैं। “मार्था तुमने कुछ भी नहीं खाया ... कुछ लोगी?”

“नहीं...खाऊंगी कुछ नहीं। सिगरेट हो, तो दो।”

‘लवर्स’ कहानी में नायक बिना जलाए सिगरेट हाथ में लिए है। “मेरे हाथ में सिगरेट है, जिसे मैंने अभी तक नहीं जलाया। दूसरा हाथ टांगों के नीचे दबा है।”¹⁶

‘लंदन की एक रात’ कहानी में बिली और जार्ज बेरोज़गार होने के साथ-साथ शराब पीना नहीं छोड़ सकते चाहे शराब के लिए इन्हें किसी से उधार ही क्यों न लेना पड़े। “टेवर्न के पीछे गली-गली में अंधेरे कोने में दो छायाएं, एक-दूसरे से लिपटी हुई, बार-बार हिल उठती थीं। ऊपर उठी हुई स्कर्ट के नीचे एक सूडोल नंगी टांग रह-रह कर कांप जाती, चलो, कुछ बिथर पी जाए। बिना कुछ पीए मैं ठीक से सो नहीं सकता।” बिली ने कहा।

... मैं थोड़ी-सी जिन लूंगा। आशा है, कल मेरा मित्र कुछ शीलिंग उधार दे सकेगा। हमारे पांव पव की ओर मुड़ गए।”¹⁷

प्रस्तुत कहानी में लेखक ने बिली और जार्ज पात्रों के माध्यम से विदेशी संस्कृति का वर्णन किया। ‘लंदन की एक रात’ कहानी में जार्ज का दोस्त जो कि अपनी गर्लफ्रेंड के साथ अनैतिक संबंध स्थापित कर

रहा है, इसका भी वर्णन किया गया है। “जानते हो, लंदन में मैं अपने एक दोस्त के घर ठहरा हूं। पिछले कुछ दिनों से उसकी गर्लफ्रेंड फ़िनलैंड से उसके संग रहने आई थी। कमरा एक ही था, इसलिए मैं बाहर रहता था।”¹⁸

निर्मल वर्मा के नारी पात्र पाश्चात्य वेशभूषा धारण करते हैं। इनकी नायिकाएं स्कर्ट और स्कार्फ पहनती हैं। ‘एक शुरुआत’ का नायक कहता है, “सर्दियों में यहां की लड़कियां जीन्स पहनती हैं। स्टीमर खचाखच भरा था, चारों ओर नीली जीन्स पहने लड़कियां हवा में उड़ते रंग-बिरंगे स्कार्फ और बियर के गिलास के इर्द-गिर्द बैठे लड़के-लड़कियों के गुच्छे दिखाई दे जाते थे।”¹⁹

‘पराए शहर में’ का नायक बताता है कि, “और वह एक विराट स्त्री थी। उसने सस्ती जार्जेट की लंबी स्कर्ट पहन रखी थी। जुराबें नायलॉन की थीं। लेकिन एड़ियों के पास से घिस गई थीं।”²⁰

बिली जार्ज के साथ नाच रही लड़की के पहनावे को बताता है— “उसके कंधों पर पाउडर के हल्के निशान थे और उसने सस्ती छींट की समर-स्कर्ट पहन रखी थी। होंठों पर पसीने की बूंदें थीं, जो शायद देर तक नाचने के कारण लिपिस्टिक के ऊपर छितरा आई थीं।”²¹

इस प्रकार से हम देखते हैं कि निर्मल वर्मा की कहानियों में जो मानसिकता देखने को मिलती है वह विदेशी परिवेश की उपज है। भारतीय परिवेश में जहां व्यक्ति अमन, शांति, खुशी एवं आत्मीयता के बीच जीवन व्यतीत करता है वहां विदेशों में अजनबीपन, कुंठा, निराशा, दुरी, भय, तड़प के धुएं से भरा दम घुटने वाला परिवेश है, जिसमें व्यक्ति आसानी से न तो मर सकता है न खुशी से जीवन व्यतीत कर सकता है। निर्मल वर्मा की सभी प्रकाशित कृतियां चाहे वे उपन्यास हों या फिर कहानी, संस्मरण या निबंध—प्रत्येक रचना में भौगोलिक, सांस्कृतिक तथा मानसिक स्तर पर विदेशी परिवेश हावी है। निर्मल वर्मा के कथा साहित्य की कहानियां आम आदमी के अनुभव की कहानियां हैं। हर व्यक्ति का चरित्र ऐसा लगता है मानो पात्रों में वे खुद हों। इसी कारण इनकी कहानियों में रोमांटिक प्रेम के तत्वों में अवसाद की गहरी छाया है। अतः निर्मल वर्मा की कहानियों का हिंदी साहित्य में विशिष्ट स्थान है। यथार्थ को जिस स्तर पर उन्होंने पकड़ा है और पाश्चात्य परिवेश में ढालकर और निमग्न होकर उन्होंने जो लिखा है वह न केवल निर्मल वर्मा की उपलब्धि है अपितु आधुनिक हिंदी साहित्य की अमूल्य निधि है।

संदर्भ

1. सुरेश सिन्हा, हिंदी कहानी : उद्भव और विकास, पृ. 565
2. निर्मल वर्मा, मेरी प्रिय कहानियां, भूमिका
3. कार्दाम्बिनी, क्यों और क्यों नहीं, अंक जुलाई, 1974
4. सरिता बशिष्ठ, निर्मल वर्मा की कहानियों का विदेशी परिवेश, पृ. 67
5. वासुदेव शर्मा, साठोत्तर हिंदी कहानी, पृ. 99
6. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, पृ. 75, 7. पृ. 21
8. निर्मल वर्मा, बीच बहस में, पृ. 24
- 9-12. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, पृ. 70, पृ. 70, पृ. 7, पृ. 139
13. निर्मल वर्मा, पिछली गर्मियों में, पृ. 105-106
14. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, पृ. 42
15. निर्मल वर्मा, पिछली गर्मियों में, पृ. 36, 16. पृ. 13
17. निर्मल वर्मा, जलती झाड़ी, पृ. 104, 18. पृ. 111, 19. पृ. 47, 20. पृ. 48, 21. पृ. 114

संपर्क : केंद्रीय विश्वविद्यालय, हिमाचल प्रदेश

मौलाना आज़ाद पत्रकार के रूप में

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के पत्रकारिता-जीवन पर दृष्टिपात करने से यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय या मात्र विलास का साधन नहीं थी। उनके लिए पत्रकारिता एक मिशन की तरह थी। वस्तुतः यह युग के अनुरूप भी था, बता रहे हैं रहमान मुसव्विर

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद (1888-1958) बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। धार्मिक विद्वान, कुरआन के विशेषज्ञ, दूरदर्शी राजनेता, प्रखर बुद्धिजीवी, गंभीर विचारक, ओजस्वी वक्ता और निर्भीक पत्रकार आदि अनेक रूपों में वे एक विलक्षण व्यक्तित्व के स्वामी थे। मौलाना के जीवन, गतिविधि और चिंतन प्रक्रिया पर विहंगम दृष्टि डाली जाए तो हम देखते हैं कि वे मूल रूप से पत्रकार थे। यह बात अलग है कि अपने जीवन के उत्कर्ष काल में राजनीतिक और सामाजिक सक्रियता और सरोकारों के चलते उन्हें पत्रकार के रूप में अपनी यात्रा स्थगित करनी पड़ी।

मौलाना आज़ाद की पारिवारिक पृष्ठभूमि धार्मिक और साहित्यिक थी। परिणामस्वरूप उनमें धर्म के प्रति झुकाव और साहित्य के प्रति अनुराग स्वाभाविक था किंतु उनकी बुद्धि कुशाग्र और दृष्टि मौलिक थी। इसका प्रमाण इस बात से मिलता है कि उन्होंने मात्र 14 वर्ष की अवस्था में 'फ़ज़ीलत' की डिग्री हासिल कर ली थी जबकि सामान्य रूप से 13-14 साल तो इस पाठ्यक्रम को पूर्ण करने में ही लग जाते हैं। इससे भी बढ़कर आश्चर्यचकित करने वाली बात यह थी कि मात्र 11 वर्ष की अवस्था में उन्होंने

'निरंगे-आलम' (1899) नामक पत्रिका का प्रकाशन और संपादन किया। इसमें प्रत्येक माह उर्दू शायरों का कलाम प्रकाशित होता था। उस समय ऐसी पत्रिकाओं का चलन आम था। इन्हें 'गुलदस्ता' कहा जाता था। मात्र 11 वर्ष की अवस्था में किसी साहित्यिक पत्रिका का संपादन करने का यह कदाचित एकमात्र उदाहरण है। यह पत्रिका केवल एक वर्ष से भी कम अवधि में ही बंद हो गई लेकिन इसके महत्त्व को कम करके नहीं देखा जा सकता। वस्तुतः आज़ाद द्वारा इस पत्रिका का प्रकाशन और संपादन भावी पत्रकारिता के लिए एक प्रकार से पूर्वाभ्यास ही था।

मौलाना आज़ाद की दूरदृष्टि ने संचार माध्यम के इस रूप की शक्ति को बहुत जल्दी पहचान लिया था। वे इसके महत्त्व को भली-भांति समझते थे। मौलाना लिखते हैं कि 'इस ज़माने में सबसे बड़ा, बुलंदतर मक़ाम (उच्च स्थान) जो किसी इंसान के लिए हो सकता है, ये नज़र

आता था कि मज़ामीन (लेख) लिखे जाएं और वो हमारे नाम से शायर (प्रकाशित) हों। इसके बाद इससे बुलंदतर मक़ाम ये था कि किसी अख़बार या रिसाले के एडिटर हों।' मौलाना आज़ाद के पत्रकारिता

जीवन का विधिवत आरंभ 'अल-मिस्बाह' के प्रकाशन से माना जा सकता है। इस साप्ताहिक पत्र का प्रकाशन 22 जनवरी 1900 से आरंभ हुआ। उस समय संयोगवश ईद पड़ रही थी तो प्रवेशांक में मौलाना ने अग्रलेख के रूप में 'ईद' शीर्षक से लेख लिखा। यह लेख बहुत चर्चित रहा। यही नहीं, बल्कि उस लेख को अन्य सामयिक पत्रिकाओं ने भी प्रकाशित किया। यह साप्ताहिक पत्र सामग्री और संयोजन की दृष्टि से बहुत संतुलित था। इसमें केवल सामाजिक और धार्मिक विषयों पर ही लेख नहीं होते थे अपितु शिक्षा, इतिहास और जीवनी से संबंधित लेखों के लिए भी एक-एक पृष्ठ निर्धारित था। सामान्य पाठक से लेकर बुद्धिजीवी वर्ग तक सभी हतप्रभ थे कि केवल 12 वर्ष का किशोर इतनी परिपक्वता से न केवल पत्रिका का संपादन कर रहा है बल्कि अपने विचारों को भी दृढ़ता से प्रस्तुत कर रहा है। यह पत्रिका केवल चार महीने ही चल सकी।



सन 1901 में 'मख़ज़न' का प्रकाशन आरंभ हुआ। आज़ाद के लेख इसमें छपने लगे। उनके चर्चित लेख 'अख़बार और उसके फ़ायदे' तथा 'हालाते-खाक़ानी शेरवानी' इसी पत्रिका में छपे थे। जनवरी 1902 में 'एहसानुल-अख़बार' शुरू हुआ। मौलाना आज़ाद इसके संपादकीय विभाग से जुड़ गए। इस पत्रिका में भी उनके लेख निरंतर प्रकाशित हुए। ईरानी कवियों पर उनके सिलसिलेवार लेख इसी पत्रिका में प्रकाशित हुए। इसी ज़माने में मुंशी नौबत राय नज़र का पत्र 'ख़दंगे-नज़र' प्रकाशित हो रहा था। मुंशी नौबत राय नज़र की दृष्टि मेधावी आज़ाद पर पड़ी। इस पत्रिका में भी लेखों का सिलसिला शुरू किया गया और इसका दायित्व मौलाना आज़ाद को सौंपा गया।

20 नवंबर 1903 को मौलाना आज़ाद ने मासिक पत्र 'लिसानुल-सिद्क' का संपादन आरंभ किया। यह वह समय था जब अल्ताफ़ हुसैन हाली,

अकबर इलाहाबादी और डिप्टी नजीर अहमद जीवित थे। सर सैयद के पत्र 'तहज़ीबुल-अख़्लाक' की प्रतिध्वनि अभी तक सुनी जा सकती थी जिसमें समाज-सुधार और शिक्षा पर सर्वाधिक बल था। मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के 'लिसानुल-सिद्क' पर उसकी स्पष्ट छाप दिखाई देती है। इस पत्र में मौलाना ने न केवल ज्ञान और साहित्य के विस्तार की दिशा में गंभीर प्रयास किए बल्कि लोगों की अभिरुचि को परिष्कृत करने की दिशा में भी उल्लेखनीय योगदान दिया। उन्होंने कला और साहित्य की आलोचना और समीक्षा भी की तथा समाज सुधार से संबंधित लेख लिखे और प्रकाशित किए। 'लिसानुल-मुल्क' का मकसद यह भी था कि वो तालीम याफ़्ता मुसलमानों में, खुसूसन (विशेष रूप से) बंगाल के मुसलमानों में अदबी ज़ौक (साहित्यिक अभिरुचि) की परवरिश करे। आज़ाद को ये एहसास था कि तालीम की इशाअत (प्रकाशन) की रफ़्तार तेज़ थी मगर अदबी ज़ौक का फुक़दान (अभाव) था। ये सूरत बंगाल में और भी नाजुक थी जहां तालीम याफ़्ता हिंदू-मुसलमानों से कहीं आगे थे।¹² इस पत्र का अंतिम अंक अप्रैल-मई 1905 (संयुक्तांक) आगरा से निकला था। मौलाना आज़ाद ने बड़ी सूझ-बूझ और हिम्मत से इस पत्र का प्रकाशन और संपादन किया था जिसके कारण इनके कारनामों की धमक दूर-दूर तक जाने लगी थी। मुसलमानों की प्रसिद्ध संस्था 'अंजुमने-जमाते-इस्लाम' के सदस्यों ने आज़ाद को 1904 के अपने वार्षिक अधिवेशन में भाषण देने के लिए आमंत्रित किया। जब यह 15 वर्षीय किशोर संपादक लाहौर पहुंचा तो लोग अचंभित थे। कुछ ने तो उन्हें संदेह की दृष्टि से भी देखा लेकिन जब अगले दिन आज़ाद ने पूर्ण आत्मविश्वास के साथ अपना भाषण दिया तो लोग दंग रह गए।

सन 1904 या 1905 की घटना है। मौलाना आज़ाद इराक की यात्रा से लौट रहे थे। संयोगवश बंबई (अब मुंबई) में उनकी मुलाकात मौलाना शिब्ली से हो गई। उन्होंने आज़ाद से कहा कि "तुम्हारा ज़ेहन व दिमाग़ अजायबे-रोज़गार में से है। तुम्हें तो किसी इल्मी नुमाइशगाह में बतौर एक अजूबे के पेश करना चाहिए।"¹³ इस होनहार किशोरवय आज़ाद की असाधारण बुद्धि और ज्ञान के प्रति गहरी उत्सुकता ने शिब्ली को बहुत प्रभावित किया। सन 1905 में उन्होंने आज़ाद को 'अन्दोह' नामक पत्र के संपादक मंडल में सम्मिलित होने का निमंत्रण दिया। शिब्ली इसके संपादक हुआ करते थे। आज़ाद को सह-संपादक बनाया गया। शिब्ली के सान्निध्य में आज़ाद ने साहित्यिक और ज्ञानप्रद पत्रकारिता की बारीकियां सीखीं।

आज़ाद की कीर्ति दूर-दूर तक पहुंच रही थी। अमृतसर से 'वकील' नाम का द्वि-दिवसीय पत्र निकला करता था। इस पत्र के मालिक शेख़ गुलाम मुहम्मद ने आज़ाद को इस समाचार-पत्र के संपादन का निमंत्रण दिया। आज़ाद ने इसे स्वीकार कर लिया और अमृतसर आ गए। 'वकील' उस समय उर्दू समाचार-पत्रों में सर्वाधिक प्रतिष्ठित, गंभीर और राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ा पत्र समझा जाता था। विचार के स्तर पर यह एक स्वतंत्र समाचार-पत्र था। मौलाना ने अपने स्वभाव के अनुरूप इस अख़बार में भी जी लगाकर काम किया। इसी बीच नवंबर 1906 में मौलाना के अग्रज गुलाम यासीन 'आह' का देहांत हो गया। आज़ाद को अमृतसर छोड़कर कलकत्ता आना पड़ा। कुछ दिन यहां रहने के पश्चात आज़ाद पुनः अमृतसर आ गए और 'वकील' का संपादन करने लगे। उन्होंने अगस्त 1908 तक पुनः 'वकील' का संपादन किया। पत्रकारिता

के लिए समर्पित आज़ाद अपने कलकत्ता प्रवास के दौरान भी लेखन और संपादन से जुड़े रहे। उन्होंने इस दौरान साप्ताहिक पत्र 'सल्लनत' का संपादन किया।

अगस्त 1908 से अगस्त 1912 तक का समय मौलाना आज़ाद के पत्रकारिता-जीवन का सन्नाटे का समय है। यह चार साल की अवधि संभवतः आत्म-चिंतन की अवधि है। इस समय मौलाना ने अपने संपूर्ण कार्य और पत्रकारिता-जीवन का सिंहावलोकन किया होगा और भविष्य की दिशा और दृष्टि तय की होगी। इस समय उन्होंने महसूस किया होगा कि राजनीतिक सक्रियता के बिना सामाजिक परिवर्तन नहीं हो सकता। उन्होंने निर्णय लिया कि वे समाचार-पत्र के माध्यम से जनमत निर्माण का कार्य करेंगे और मुसलमानों को आंदोलन से जोड़ेंगे ताकि वे अंग्रेजों की पराधीनता के विरुद्ध उठ खड़े हों। जुलाई 1912 में 'अल-हिलाल' का उदय इसका प्रमाण है। यह साप्ताहिक पत्र था। यह उर्दू पत्रकारिता में मील का पत्थर माना जाता है। यह पत्र न केवल सामग्री और विषय-वस्तु के कारण विशिष्ट था बल्कि अपने रंग-रूप और बाहरी कलेवर में भी नई चमक-दमक के साथ अवतरित हुआ। इससे पूर्व उर्दू अख़बार लिथो पर प्रकाशित होते थे। 'अल-हिलाल' में 'टाइप' का प्रयोग किया गया। आरंभ में इसमें बहुत-सी कठिनाइयां आईं लेकिन बाद में बात बनती चली गई। यह उर्दू का पहला समाचार पत्र था जिसमें तस्वीरें भी छपती थीं। इस पत्र ने न केवल तत्कालीन उर्दू पत्रकारिता को नई भाव-भंगिमा से परिचित कराया अपितु उर्दू भाषा के परिष्कार की दिशा में भी उल्लेखनीय प्रयास किया। देखते ही देखते यह पत्रिका इतनी लोकप्रिय हो गई कि इसकी प्रतियों की संख्या 26 हजार तक पहुंच गई। हर खास और आम अधीरता से इसकी प्रतीक्षा किया करता था। अली जव्वाद जैदी अपने एक मित्र का हवाला देते हुए लिखते हैं कि "जिस ज़माने में 'अल-हिलाल' निकल रहा था वो कलकत्ते गए हुए थे और एक बुजुर्ग आलिम के कमरे में बैठे हुए थे। वहां चालीस-पचास आदमी मौजूद थे। अचानक बग़ल में कोई आवाज़ हुई और लोग उस कमरे से निकल भागे, गोया कहीं आग लग गई है या किसी ग़नीम (डाकू) ने हमला कर दिया है। कमरा खाली हो गया। मेरे दोस्त ने हेरान होकर मौलाना से पूछा कि ये क्या मुआमला है। उन्होंने कहा कि यहीं करीब में एक नौजवान शख्स अख़बार निकाल रहा है। जब वो अख़बार बाज़ार में आता है तो लोग उस पर टूट पड़ते हैं और हर एक लेने की कोशिश करता है। मालूम नहीं ये शख्स आइंदा चलकर क्या बनेगा।"¹⁴ 18 नवंबर 1914 को 'अल-हिलाल' बंद हो गया। एक साल बाद 'अल-बलाग़' के रूप में इसका पुनर्प्रकाशन हुआ। लेकिन यह साप्ताहिक न होकर पाक्षिक था। इसमें वह आबो-ताब भी नहीं थी जो 'अल-हिलाल' में थी। 'अल-हिलाल' में राजनीति पर बल था जबकि 'अल-बलाग़' का झुकाव मज़हब की ओर था। इसकी आयु मात्र पांच माह थी। इसके बाद ग्यारह वर्ष तक मौलाना कोई पत्र प्रकाशित न कर सके। 10 जून 1927 को 'अल-हिलाल' फिर प्रकाशित हुआ और 9 दिसंबर 1927 को सदा के लिए बंद हो गया।¹⁵

इनके अतिरिक्त भी मौलाना आज़ाद कई अन्य पत्र-पत्रिकाओं से जुड़े रहे। 'पैगाम' (1921), 'अल-जामिआ' (1923-24), और 'पयाम' (1927) के नाम उल्लेखनीय हैं जिनसे मौलाना आज़ाद किसी-न-किसी रूप में जुड़े रहे।

मौलाना अबुल कलाम आज़ाद के पत्रकारिता-जीवन पर दृष्टिपात

करने से यह स्पष्ट होता है कि उनके लिए पत्रकारिता व्यवसाय या मात्र विलास का साधन नहीं थी। उनके लिए पत्रकारिता एक मिशन की तरह थी। वस्तुतः यह युग के अनुरूप भी था। उर्दू पत्रकारिता के समानांतर ही हिंदी पत्रकारिता भी अपने आरंभ काल में मिशन ही थी। उन्नीसवीं शताब्दी का उत्तरार्ध और बीसवीं शताब्दी का पूर्वार्ध नवजागरण और स्वाधीनता आंदोलन के उग्र होने का समय है। राजा राम मोहन राय (1772-1833) द्वारा शुरू किए गए समाज सुधार आंदोलन की प्रतिध्वनि आगे चलकर सर सैयद अहमद खां (1817-1898) के सुधारवादी आंदोलन में सुनाई देती है। स्वाधीनता संग्राम का लगभग प्रत्येक सेनानी किसी-न-किसी रूप में पत्रकारिता से जुड़ा था। बाल गंगाधर तिलक (1856-1920), मदन मोहन मालवीय (1868-1946) और महात्मा गांधी (1869-1948) इसके उदाहरण हैं। उर्दू में यह क्रम सर सैयद अहमद खां (1817-1998) और अल्लामा शिक्वी (1857-1914) से लेकर मौलाना आज़ाद तक पहुंचता है। सर सैयद अहमद खां के सुधार और मिशन का बल मुस्लिम समाज की उन्नति पर था। वे अंग्रेजी और आधुनिक शिक्षा के प्रबल पक्षधर थे। उनका मानना था कि मुस्लिम समाज अंग्रेजी सीखकर ही नए युग के साथ कदम ताल कर सकते हैं। सर सैयद के प्रयासों को सफलता तो मिली लेकिन एक गड़बड़ यह हो गई कि शिक्षित मुसलमानों और हिंदुओं में एक प्रकार का अलगाव दिखाई देने लगा। षड्यंत्र के तहत ऐसी स्थितियां उत्पन्न की गई कि मुसलमानों को स्वतंत्रता का विरोधी समझा जाने लगा। मौलाना आज़ाद ने इस स्थिति को समय रहते भांप लिया। यद्यपि वे सर सैयद को बहुत मानते थे, उनके आरंभिक लेखों में सर सैयद का प्रभाव भी देखा जा सकता है लेकिन बाद में उन्होंने अपना एक अलग मार्ग निश्चित किया। उन्होंने अपने लेखन के माध्यम से देश के मुसलमानों को हिंदुओं के साथ मिलकर संघर्ष करने की प्रेरणा दी। उनके अनुसार मुसलमानों को पुराने विचारों को छोड़कर नई चिंतनधारा से जुड़ना चाहिए।

मौलाना आज़ाद हिंदू-मुस्लिम एकता के सबसे बड़े ध्वजधारक थे। उन्होंने अपने अखबारों और भाषणों में इस बात की आवश्यकता पर बल दिया कि हिंदू और मुसलमानों का परस्पर मिलजुल कर ब्रिटिश साम्राज्य से लोहा लेना चाहिए। उनका मानना था कि यह उद्देश्य तभी पूरा हो सकेगा जब मुसलमान स्वयं को हिंदुओं के निकट लाएंगे। 'अल-हिलाल' के प्रकाशन का एक मुख्य उद्देश्य हिंदू और मुसलमानों के बीच के वैमनस्य को मिटाना और भाईचारा कायम करना भी था। इस बारे में एक बार उन्होंने कहा था कि 'अल-हिलाल' के पहले नंबर में जिस नुमायां मकसद का ऐलान किया गया था—क्या था? मैं फख के साथ ऐलान करना चाहता हूँ कि वो हिंदू-मुसलमान का इतेफाक था। हिंदुस्तान के मुसलमानों का ये फर्ज-शर्ह है कि वो हिंदुस्तान के हिंदुओं से कामिल (पूरी) सच्चाई के साथ अहदो-पैमान (संकल्प) बांध लें और उनके साथ मिलकर एक नेशन हो जाएं।"

मौलाना आज़ाद ने अपने मिशन को सर्वोपरि रखा। वे किसी प्रकार के दबाव के आगे कभी नहीं झुके। अपने दृष्टिकोण के प्रति वे निहायत स्पष्ट थे। जो कुछ लिखते थे सोच-समझकर लिखते थे और फिर उस पर दृढ़ता से कायम रहते थे। अखबार 'वकील' के मालिक शेख गुलाम मुहम्मद खां से उनके विचारधारात्मक मतभेद पैदा हो गए थे। समझौता करने की अपेक्षा उन्होंने अखबार का संपादन छोड़ना बेहतर

समझा। वे समय से आगे की सोच रखते थे। उन्होंने महसूस कर लिया था कि मुसलमानों के पिछड़ेपन का एकमात्र इलाज निरंतर उनका मार्गदर्शन और समय-समय पर सचेत करके ही हो सकता है। इसीलिए वे अपने लेखों के माध्यम से मुसलमानों को इस्लाम के वास्तविक अर्थ से परिचित कराते रहे। उन्होंने बड़ी निर्भीकता से उन विषयों पर भी अपनी राय रखी जिनसे उलेमा नाराज़ हो सकते थे। उन्होंने इस्लाम की व्याख्या आधुनिक संदर्भों में की। जिस नारी सशक्तिकरण की बात आज जोर-शोर से की जा रही है, उसके बारे में मौलाना आज़ाद बड़ी वेबाकी से बहुत पहले लिख चुके थे। वे कहते हैं "जब तक मुतारिफ़ पर्दा हिंदुस्तान से न उठेगा, जब तक औरतों को जायज़ आज़ादी जिसका इस्लाम में मुजव्विज़ (अनुमति देता) है, न दी जाएगी, गुलामी में रखकर और पर्दे की तकलीद के साथ तालीम देना न सिर्फ़ फ़जूल (व्यर्थ) बल्कि मुज़िर (घातक) और अशद मुज़िर है।" 'अल-हिलाल' में मौलाना लिखते हैं—"हमको बसाओकात (प्रायः) ये दर्दअंगेज़ (कष्टकारक) मंज़ूर मजनु (पागल) बना देता है कि आज मुसलमानों में दो ही तरह के रहनुमा (नेता) और मुशिदीन (मार्गदर्शक) हैं। क़दीम (पुराने) गिरोह के लिए पुराने उलेमा और नए गिरोह के लिए नए लीडर। दोनों मज़हब से बेख़बर और मिल्लत के लिए अज़े-मस्मूम (ज़हरीला अंग)। पहला करीब रहकर प्यासा है और दूसरा पानी तक पहुंचता ही नहीं।"

मौलाना आज़ाद ने कभी बने-बनाए रास्ते पर चलना स्वीकार नहीं किया। उन्होंने स्वयं अपने मार्ग प्रशस्त किए। पत्रकारिता में भी उन्होंने पहले से बनी-बनाई विचारधारा का अनुसरण नहीं किया अपितु अपनी मौलिकता का परिचय दिया। उनका दृष्टिकोण था कि 'जब कोई दांचा इतना बिगड़ जाए कि उसकी इस्लाह (सुधार) और मरम्मत मुमकिन न हो तो जरूरत इस अम्र (कर्म) की है कि पहले उस दांचे को तोड़ा जाए और फिर अज़-सरे-नौ (नए सिरे से) तामीर की जाए।" उन्होंने आम जन की रुचि के अनुसार अखबार नहीं निकाला बल्कि अखबार के द्वारा आम जन की अभिरुचि और चिंतन प्रक्रिया को परिवर्तित, परिष्कृत और संवर्धित करने की चेष्टा की।

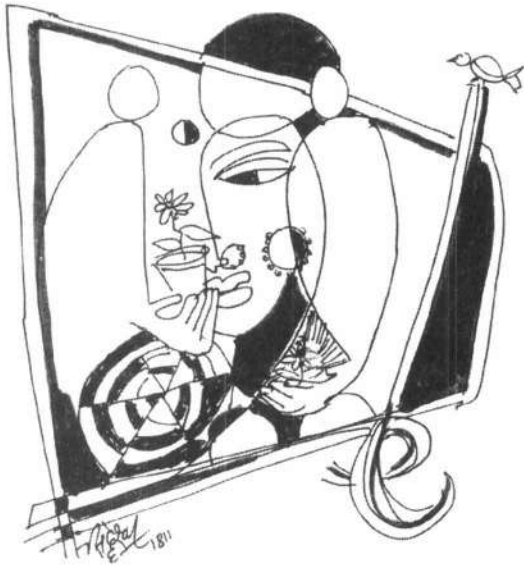
संदर्भ :

1. आज़ाद की कहानी, अब्दुर्रज़ाक मलीहाबादी, उजाला प्रेस, कलकत्ता, 1960, पृ. 274
2. निसानुल-सिद्क, 20 नवंबर 1902
3. ज़ियाउल हसन फारूकी, मौलाना अबुल कलाम आज़ाद : आज़ादी की तरफ, पकतवा जामिया लि., दिल्ली, 2003, पृ. 115
4. अली ज़वाद ज़ैदी, मौलाना आज़ाद का सहाफ़ती सफ़र, अबुल कलाम आज़ाद : शख़िसियत और कारनामे (संपा-ख़लीक़ अंजुम), उर्दू अकादमी, दिल्ली, सातवां संस्करण 2003, पृ. 411
5. महमूद अंसारी, तहरीक-आज़ादी में अल-हिलाल और अन-वनाग़ का हिस्सा, अबुल कलाम आज़ाद : शख़िसियत और कारनामे (संपा-ख़लीक़ अंजुम), उर्दू अकादमी, दिल्ली, सातवां संस्करण 2003, पृ. 432
6. अबुल कलाम आज़ाद : शख़िसियत और कारनामे (संपा-ख़लीक़ अंजुम), उर्दू अकादमी, दिल्ली, सातवां संस्करण 2003, पृ. 128-129
7. तालीम-निस्वां, अलीगढ़ मंथली, 1903
8. अल-हिलाल, जिल्द-1, अंक-4, 4 अगस्त 1913, पृ. 4
9. नियाज़ फतेहपुरी, मौलाना आज़ाद की सहाफ़ती अंजुम, 'आजकल' उर्दू (अबुल कलाम आज़ाद विशेषांक), पब्लिकेशन डिविज़न, सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, दिसंबर 1958 (पुस्तकाकार) पृ. 46

संपर्क : हिंदी विभाग, जामिया मिल्लिया इस्लामिया, नई दिल्ली-110025

सहारे की छड़ी

विपुल ज्वाला प्रसाद



पौष की हड्डी कंपा देने वाली ठंड अब धीरे-धीरे अपना बिस्तर समेट, गैस्ट हाउस खाली करने वाले मुसाफिर की तरह जाने की तैयारी कर रही थी। सूरज अब पृथ्वी पर गुनगुनी, सुहानी-सुहानी धूप का गलीचा बिछाने लगा था।

डा. चित्रा अपने नर्सिंग होम के लॉन में कुर्सी पर बैठी बड़े आराम से धूप सेंक रही थी। उसके आसपास दो-चार कुर्सियां और भी पड़ी थीं। लॉन में उसका अल्सेशियन कुत्ता भी उसके इर्द-गिर्द घूम रहा था। उसी समय एक महिला वहां आई। उसे देख डा. चित्रा ने तपाक से उसका स्वागत किया, 'आइए मिसेज बत्रा! ... कहिए सब ठीक-ठाक तो है न?'

“हां...सब ठीक-ठाक डाक्टर...।” कहती वह चित्रा के इशारे पर पड़ी कुर्सी पर बैठ गई तथा वहां घूमते अल्सेशियन कुत्ते पर किसी गोल-गुदकारे प्यारे बच्चे का दुलार करने की तरह उस पर अपना हाथ फिराने लगी। कुत्ता

उससे घुला-मिला था। मिसेज बत्रा द्वारा उस पर हाथ फिराने पर कुत्ता अपनी पूंछ हिलाने लगा था। कुत्ते को छोड़ मिसेज बत्रा अब डा. चित्रा की तरफ मुखातिब हुई, “आप तो जानती ही हैं डॉक्टर!...मेरे घर में पहले से ही दो लड़कियां मौजूद हैं। अब तीसरी की तो मैं कल्पना भी नहीं कर सकती। आप इस बार की प्रिगनेंसी की जांच कर लीजिए। रिज़ल्ट मनोनुकूल हुआ तो ठीक, वरना इसे आप नष्ट कर देना।”

यह सुन डा. चित्रा एक बारगी तो उसे अवाक्-सी देखती ही रह गई। वह अन्यमनस्क हो आई। कुछ पलों के लिए उसके चेहरे पर अजीब-अजीब भाव, आकाश में काले-पीले बादलों की तरह उमड़ने-धुमड़ने लगे। लेकिन किसी विवेकी पुरुष द्वारा हृदय विदारक पीड़ा को अति सामान्य लेने की तरह डा. चित्रा उससे बोली, ‘डेंट वरी मिसेज बत्रा! आपके गर्भ की अभी जांच किए देती हूं। जैसा भी

रिज़ल्ट होगा, आपको बता देती हूं। इसके बाद जैसा आप कहेंगी वैसा कर दूंगी।”

और वे दोनों लॉन से उठकर नर्सिंग होम में आ गई। परीक्षण कक्ष में आकर डा. चित्रा उसके गर्भ का लिंग परीक्षण अल्ट्रासाउंड मशीन पर करने लगी। मशीन पर गर्भ का लिंग परीक्षण कर डा. चित्रा के मुख पर सहसा मुस्कान की रेखा तिर आई, “बधाई मिसेज बत्रा! इस बार तो आपके गर्भ में नर-भ्रूण ही है।”

अपने गर्भ में नर-भ्रूण की बात सुन, वन के मुक्त परिंदे की तरह मिसेज बत्रा चहक पड़ी और नीम के पेड़ से गिलोय के लिपट जाने की तरह डा. चित्रा से लिपट गई। “आपके मुंह में खूब-खूब घी-शक्कर डॉक्टरSSSS। ऐसी दूध-बतासे सी मीठी बात मैंने बहुत वर्षों में सुनी है। लीजिए यह आपकी फीसSSSS” ...और उसने आनंद-उल्लास में थिरकते कुछ गांधी छाप नोट उसकी हथेली पर रख दिए। साथ ही यह कथन भी जोड़ दिया “यह तो अभी आपके लिए मामूली सा तोहफा ही है। जब मेरी मुराद पूरी होकर सामने आ जाएगी न तब मैं आपकी तबीयत और भी खुश कर दूंगी” और वह असीम प्रसन्नता की रौ में नर्सिंग होम की मार्बल की सफेद बुराक सीढ़ियों से घर जाने के लिए उतरने लगी। नर्सिंग होम के पार्क में तरह-तरह के फूल खिल रहे थे। गुलाब के फूलों की गंध वातावरण में नया उत्साह, जोश, ताज़गी का अहसास भर रही थी।

मिसेज बत्रा नर्सिंग होम की आखिरी सीढ़ी पर पैर रख ही रही थी कि डा. चित्रा ने उसे रोका, “यह डिलीवरी मेरे ही नर्सिंग होम में कराना मिसेज बत्रा! SSSSS कर्णावती नर्सिंग होम में नहीं ...” मिसेज बत्रा यह सुन तुरंत उसी उत्साह में मुड़ी तथा अपार प्रसन्नता का फव्वारा छोड़ती कहने लगी, “कैसी बातें करती हैं आप डाक्टर! ... भला यह कैसे हो सकता है? डिलीवरी की जांच यहां कराऊं और कर्णावती नर्सिंग होम में डिलीवरी...ऐसा कभी नहीं हो सकता। डिलीवरी आपके ही नर्सिंग होम में कराऊंगी आप बी श्योर...” और कंधे में लटक के बैग को हिलाती-झुलाती अपने घर के लिए आगे बढ़ ली।

डिलीवरी का समय आया जान मिसेज बत्रा डा. चित्रा के नर्सिंग होम में आकर भर्ती हो गई। डा. चित्रा ने उसके लिए नर्सिंग होम में एक विशेष कमरे की व्यवस्था की थी। डिलीवरी होने के बाद उस कमरे में डा. चित्रा तथा नर्स

जच्चा-बच्चा दोनों की साल-संभाल में तल्लीन थी। जैसे ही मिसेज बत्रा डिलीवरी होने के बाद सचेत हुई, उसे पता चला कि डिलीवरी में इस बार भी लड़की ही पैदा हुई है तो तैयारों द्वारा काटे गए व्यक्ति की तरह डा. चित्रा पर बिफर पड़ी, “यह क्या डॉक्टर! SSSSSS” मिसेज बत्रा के तीव्र चढ़े पारे को देख डा. चित्रा के पास खड़ी नर्स को काटेज वार्ड से बाहर जाने का इशारा किया। बत्रा क्रोध में भभकती जा रही थी, “डॉक्टर तुम्हारी जांच का यह कैसा परिणाम...? यह सब जांच विपरीत कैसे? ...तुमने तो जांच में बताया था कि...” क्रोध में उसके होठ फड़क रहे थे। वह डा. चित्रा से आपसे तुम पर आ चुकी थी “लगता है तुमने मेरी प्रिगनेंसी की ठीक तरह जांच नहीं की। मेरे साथ तुमने ऐसी गद्दारी!! ...ऐसी मक्कारी!!...मैंने तुमसे ऐसे ही डेरों केंसों की जांच कराई। अवैधानिक कार्य होने से मैंने तुम्हें लाखों की गुप-चुप इनकम कराई। उसका तुमने मुझे यह इनाम दिया...मेरे साथ तुम्हारी ऐसी अहसान फरामोशी...ऐसी धोखाधड़ी...”

बगल में पड़ी नवजात रोती बच्ची को हेय दृष्टि से देखते हुए मिसेज बत्रा ने उसे अपने स्तन का दूध पिलाने की बजाय दूसरी ओर करवट फेर ली। उसका डा. चित्रा को अनाप-शनाप बकना जारी था। किसी सज्जन पुरुष को किसी बदमाश व्यक्ति द्वारा दी जा रही गाली-गलौज सहन करने की तरह, डा. चित्रा बड़ी ही शांति एवं सहिष्णुता से उसके कटु वचनों को सहन करती मुस्कराती जा रही थी। जब मिसेज बत्रा ने अपने मन की पूरी तरह भड़ास निकाल ली तो डा. चित्रा मिसेज बत्रा की तरफ उन्मुख हुई, “इतना दुखी मत होइए मिसेज बत्रा! आज ज़माना बहुत बदल गया है। अब लड़का-लड़की में कोई भेद नहीं। आज लड़कियां लड़कों से किसी भी क्षेत्र में कमतर साबित नहीं हो रहीं। मर्दों की तरह आज औरतें भी चंद्रमा पर जा रही हैं। अटॉर्नरों के पार दक्षिण ध्रुव पर पहुंच रही हैं! आप मां हैं मिसेज बत्रा! इतना कठोर मत होइए। मां तो सिर्फ मां होती है। ममता की साक्षात् मूर्ति। मां के हाथ तो अपनी संतान की खैर-कुशल, मंगल के लिए सदैव दुआ में ही उठे रहते हैं। मां के लिए संतान चाहे लड़का हो या लड़की, उसके मातृत्व में कोई अंतर नहीं आता। उसकी ममता तो बहुत-सी संतान होने में भी खंडित नहीं होती। मां तो अपने मन में यही मनौती मनाती है—

उसकी संतान खूब फले-फूले, पुष्पित-पल्लवित हो। आप इस बच्ची के प्रति ऐसा पृणित-कठोर बर्ताव कर रही हैं, यह उचित नहीं।”

डा. चित्रा काटेज में लगे वाश-बेसिन में साबुन से हाथ धोने लगी, “इसके अतिरिक्त आज की इस नितांत भौतिकवादी बयार से प्रभावित होकर युवक अपने मां-बाप, वृद्धाश्रमों की ओर टकल रहे हैं। इस स्थिति में बेटियां उनके लिए आश्रय-स्थल बन रही हैं। उनके मां-बाप पर ज़रा सा दुख-पीड़ा आ पड़े तो वे उससे पिघल कर कांप जाती हैं। उस पीड़ा को दूर करने के लिए वे जी-जान लगा देती हैं। बेटियां तो आंगन की महमहाती तुलसी का पौधा होती हैं। यदि इसी तरह मादा-भ्रूण नष्ट किए जाते रहे तो लोगों के वंशवाद की बेल कैसे फैलेंगी-फूलेंगी? मानव समाज में नर-मादा का औसत संतुलन बुरी तरह गड़बड़ा जाएगा। मां, बहन, बहू, पुत्री यह सब बेटियों के ही तो रूप हैं। आप भी किसी की सुता हैं। ज़रा गंभीरता-बुद्धिमानी से सोचिए मिसेज बत्रा!...”

इस पर भी डा. चित्रा ने लक्ष्य किया कि उसकी इस प्रभावी समझाइश का बत्रा पर कोई असर ही नहीं पड़ा है, किसी चिकने घड़े पर पानी नहीं उठरने की तरह। इस पर डा. चित्रा अत्यधिक संवेदनशील एवं भावुक हो आई “यदि आप इस बालिका को नहीं पालना चाहती हैं तो मैं पाल लेती हूँ। तो बत्रा पूर्व के ही तेवर में भभकी “पालिए न...किसने मना किया है... भुगतो न तुम्हीं इस भार को...चखो न मेरे साथ की गई अपनी उस गद्दारी का मज़ा...।”

इतना सुनते ही डा. चित्रा ने बत्रा की बगल में पड़ी नवजात बच्ची को नहला-धुला कर अपनी छाती से चिपका लिया। वर्षों में सीमा क्षेत्र से लौटे अपने फौजी बेटे के घर आने पर, बड़ी व्यग्रता से उसकी मां द्वारा वात्सल्य में उमंगते हुए उससे लिपटने की तरह। छाती से लिपटाते ही डॉ. चित्रा के स्तनों से झर-झर दूध बहने लगा। यह संयोग ही था कि उसका एकाएक सतमासा गर्भ गिर गया था। डा. चित्रा के चेहरे पर एक दुर्लभ प्राप्ति-तुष्टि की रेखा लकड़क कर रही थी। वह आप्लावित नदी की तरह हर्ष, आनंद में उफन रही थी। छाती से बच्चे को चिपकाए हुए ही डा. चित्रा बत्रा से बोली, “मैंने जानबूझ कर आपको इसको नर-भ्रूण बता दिया था। कारण कि अब इन नन्हे मूक प्राणियों को नष्ट करते समय उनकी करुण बेआवाज़ चीत्कार मेरी सहन सीमा

के बाहर हो जाती है, उफनती नदी के पानी द्वारा उसके किनारे तोड़ कर बाहर उमड़ने की तरह। इन नन्हे मूक प्राणियों की हत्या करने की पीड़ा धारदार चाकू की तरह मेरे अंतस्थल को गहरे तक चीर जाती है। इस गहन अपराध-बोध के कलंकी, पापी, हत्यागे, कुकर्म आदि संबोधन मेरे मर्म को हर पल, हर क्षण लहलुहान किया करते हैं।” कहती-कहती डा. चित्रा कुछ पलों के लिए चुप हो गई। फिर बात की डोरी आगे बढ़ाती बोली “यदि आपको सारी स्थिति सही-सही बता देतो तो आप गर्भस्थ भ्रूण को अवश्य ही नष्ट कर देती। मैं भ्रूण को नष्ट नहीं करती तो आप कहीं अन्यत्र इसे नष्ट करा देतीं। ऐसा मैं किसी भी कीमत पर नहीं चाहती थी। इसलिए मैंने आपको अंधेरे में रखा। सही-सही नहीं बताया। उसी समय किसी सीरियस पेशेंट के आ जाने से नर्स डॉ. चित्रा को बुलाने आई। डा. चित्रा ने बत्रा की इच्छा पर उसे नर्सिंग होम से डिस्चार्ज कर दिया। डॉ. चित्रा की बगिया में एक प्राणी के आ जाने से उसका चेहरा अनुपम उल्लास में दिप-दिप कर रहा था। उसके आनंद एवं प्रसन्नता की कोई सीमा नहीं थी। किसी को कारु का एकाएक खजाना मिल जाने की तरह। डा. चित्रा उस बच्ची को गोद में ले, उसे गुलगुली चला हंसाती तो बच्ची अपने रक्ताभ मसूड़ों को दमकाती किलकारी मार मुक्त रूप से हंसाती—मानो वह उससे कह रही हो “आपने मुझे बचाकर इस जहान को देखने का अनुूठा, अनोखा दुर्लभ अवसर दिया है मां...सच मां यह मनुष्य जीवन वेशकीमती...अतुलनीय...नायाब... अनुपम...अप्रतिम...है। मैं आपकी बगिया में तितली की नाई उड़ूंगी...धिरकूंगी...नाचूंगी... गाऊंगी...जी भर खिलखिलाऊंगी...चहकूंगी... महकूंगी। आप मुझसे जो अपेक्षाएं करेंगी मैं उनको पूर्ण कर आपके नाम में और नए, उत्कृष्ट उच्च आयाम जोड़ूंगी। मैं लोगों को ऐसे काम करके बताऊंगी कि वे दांतों तले उंगली दबा लें। आप यह देख-सुनकर फूली न समाएंगी। आप का सीना स्वाभिमान, गर्व, दर्प से तन-तन जाएगा। और जब आपका बुढ़ापा आएगा न, तब मैं मां!! आपके बुढ़ापे में आपके सहारे की छड़ी बनूंगी। सच मां! आपके बुढ़ापे के सहारे की छड़ी...।” □

संपर्क : कृष्णा कालानी, गमगंज मंडी-326519 (गजस्थान)

ग़ज़ल में भाषा का प्रश्न

हिंदी भाषी ग़ज़ल का अवतरण उर्दू ग़ज़ल से हुआ है और यह महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना है। हिंदी ग़ज़ल ने शिल्प, बहरे, काफ़िया, रद्दीफ़ उर्दू से ग्रहण किए हैं। जब ये तमाम तत्त्व उर्दू ग़ज़ल से हिंदी ग़ज़ल में प्रविष्ट हुए तो उर्दू ग़ज़ल का मिज़ाज और तग़ज़ुल भी हिंदी ग़ज़ल में स्वाभाविक रूप से अपनी आमद का अहसास कराते रहे। मिज़ाज और तग़ज़ुल का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण दुष्यंत की ग़ज़लें हैं, बता रहे हैं ज्ञानप्रकाश विवेक

देवनागरी में लिखी जाने वाली ग़ज़लों की भाषा कौन-सी हो—यह प्रश्न हमेशा बेचैन करता रहा है। यह दिक्कत 'शुद्ध हिंदी ग़ज़ल' के ग़ज़लकारों को है। वो देवनागरी लिपि की ग़ज़लों को, भाषा के ज़रिए (तत्सम शब्दों के प्रयोग से) हिंदी ग़ज़ल बनाना चाहते हैं लेकिन दुष्यंत के लिए 'भाषा' कोई दिक्कत का प्रश्न नहीं थी। उन्होंने हिंदी-उर्दू ज़बान को व्यापक नज़रिए से देखा। वो सफल रहे! हिंदी ग़ज़ल की भाषा वो भाषा होगी जो हम सब बोलते हैं यानी अवाम की भाषा! निदा फ़ाज़ली के अनुसार— 'आज की ग़ज़ल में वही भाषा उपयोग में लाई जा रही है, जो कहानी की भाषा है—यानी आम बोलचाल की भाषा! साहित्य वही जिंदा रहता है जो जनभाषा में हो'।

हिंदी भाषी ग़ज़ल का अवतरण उर्दू ग़ज़ल से हुआ है और यह एक महत्वपूर्ण साहित्यिक घटना है। हिंदी ग़ज़ल ने शिल्प, बहरे, काफ़िया, रद्दीफ़ उर्दू से ग्रहण किए हैं। जब ये तमाम तत्त्व उर्दू ग़ज़ल से हिंदी ग़ज़ल में प्रविष्ट हुए तो उर्दू ग़ज़ल का मिज़ाज और तग़ज़ुल भी हिंदी ग़ज़ल में स्वाभाविक रूप से अपनी आमद का अहसास कराते रहे।

मिज़ाज और तग़ज़ुल का सबसे श्रेष्ठ उदाहरण दुष्यंत की ग़ज़लें हैं। दुष्यंत ने ग़ज़लें हिंदी में लिखीं लेकिन मिज़ाज उर्दू ग़ज़ल का था और यही वजह थी कि दुष्यंत की ग़ज़लों ने चमत्कार पैदा किया। कथ्य हिंदी का, मिज़ाज उर्दू का। यह नया प्रयोग था और बेहद सफल रहा।

दुष्यंत की ग़ज़लियत का सबसे प्रबल और प्रभावशाली रूप यह भी है कि उन्हें शेर कहते हुए किसी प्रकार की दिक्कत नहीं होती, न मिज़ाज की दिक्कत न शिल्प की। वो उर्दू की बहरों में हिंदी की ग़ज़लें लिखते रहे। उन्हें छंद की भी कोई दिक्कत नहीं थी।

सबसे बड़ी बात, भाषा की बात! दुष्यंत के बाद जो भाषा का प्रयोग विवाद बन गया, वो दुष्यंत के लिए कोई मसला नहीं था। दुष्यंत बेहद संवेदनशील और गहरी समझ रखनेवाले ग़ज़लकार थे। उन्होंने सहज और साफ-सुथरी भाषा को अपनी ग़ज़ल की भाषा के रूप में प्रयोग किया। वो भाषा जो हमारे समय में अवाम की भाषा थी।

अपनी पुस्तक 'साये में धूप' की भूमिका लिखते हुए उन्होंने कहा भी था—उर्दू और हिंदी अपने-अपने सिंहासन से उतरकर अब आम आदमी के पास आती है तो उनमें फर्क कर पाना बड़ा मुश्किल होता है। मेरी नीयत और कोशिश यह रही है कि इन दोनों भाषाओं को ज्यादा से

ज्यादा करीब ला सकूं। इसलिए ये ग़ज़लें उस भाषा में कही गई हैं, जिसे मैं बोलता हूं।'

(भूमिका—'साए में धूप' संग्रह)

ग़ज़ल के तमाम तत्वों को लेकर ही नहीं, भाषा जैसे महत्वपूर्ण तत्व पर भी उनकी दृष्टि साफ थी। इसी स्पष्ट सोच और साफ नज़रिए के कारण उन्होंने जो शेर कहे वे अवाम की वेदना की अभिव्यक्ति बन गए।

दुष्यंत की भाषा, हिंदी ग़ज़ल की सच्ची भाषा है। इसी भाषा जैसे मुद्दे को स्पष्ट करते हुए उनके कुछ अश्रार—

मस्तहत-आमेज़ होते हैं सियासत के क़दम
तू न समझेगा सियासत, तू अभी इंसान है

मस्तहत-आमेज़ जैसे शब्द ने हिंदी कविता में हलचल पैदा कर दी थी। अजनबी-सा प्रतीत होने वाला शब्द, शेर में इतनी ताक़त से अर्थ पैदा करता था कि यह शब्द ठेठ उर्दू का होते हुए भी अवाम का (और हिंदी ग़ज़ल का) शब्द हो गया।

कैसे आकाश में सूरख नहीं हो सकता
एक पत्थर तो तबीयत से उछालो लोगो
तथा

तुमको निहारता हूं सुबह से ऋतुम्बरा
अब शाम हो रही है मगर मन नहीं भरा।

दोनों शेर अलग-अलग मिज़ाज और लहजे के हैं। दोनों शेरों की भाषा में भी भिन्नता है लेकिन कोई जकड़बंदी नहीं! दृष्टि रुढ़ नहीं। भाषा का विस्तार है और इसी भाषा के विस्तार ने दुष्यंत की ग़ज़ल को भी विस्तार दिया।

लेकिन चंद्रसेन विराट अपने लेख—'हिंदी ग़ज़ल की अस्मिता का प्रश्न' में यह सवाल उठाते हैं और यह सवाल वे दुष्यंत की ग़ज़लों को लेकर उठाते हैं—कोई हिंदी कवि ठेठ उर्दू की ग़ज़ल लिखे और चाहे, कि वह हिंदी ग़ज़ल मानी जाए तो यह विडंबना ही कही जाएगी।' ²

चंद्रसेन विराट के प्रश्न का उत्तर देने से पेशतर यह सवाल लाज़मी तौर से उठता है कि 'ठेठ उर्दू ग़ज़ल' कौन-सी होती है और उसे कौन-से ग़ज़लकार हिंदी में लिख रहे हैं? हकीकत यह है कि 'ठेठ' या 'शुद्ध' जैसे

शब्द साहित्य से खारिज हो चुके हैं। भूमंडलीकरण ने आर्थिक नुकसान जितने भी किए हों, ज्ञान को पूरे संसार में फैलाने का काम भी किया है। भाषाएं भी इसी ज्ञान-क्षेत्र में आती हैं। और फिर उर्दू तो इसी देश की भाषा है। अगर ग़ज़ल के ज़रिए, दोनों भाषाएं और क़रीब आ रही हैं तो क्या आपत्ति है ?

दुष्यंत कुमार की ग़ज़लों ने हिंदी ग़ज़ल के लिए न सिर्फ़ दर खोले बल्कि ख़ास तैवर का मुहावरा भी अता किया, ...

वास्तविकता यह है कि दुष्यंत की ग़ज़लों ने ही तय कर दिया था कि हिंदी ग़ज़ल का संस्कार भाषा में नहीं, कथ्य में तलाश कीजिए।

चंद्रसेन विराट भाषा के मुद्दे पर अपने लेख के अंत में हिंदी ग़ज़ल के लिए एक टिप्पणी व्यक्त करते हैं—‘ग़ज़ल की छंद योजना शिल्प संरचना, कलागत रूपांकन को तकनीकी दृष्टि से समझ-बूझकर आत्मसात करके, उसे हिंदी की पीठिका पर भाषागत मूल प्राकृतिक हिंदीपन के सहित शिल्पगत, भाषागत एवं अर्थगत प्रयोगों के आयामों को स्पर्श करने की ललक एवं सही रचनात्मक छटपटाहट के साथ स्थापित करने के प्रयत्न जारी रहना चाहिए।’

(‘साहित्य सागर’—ग़ज़ल अंक 2002)

चंद्रसेन विराट की हिंदी की पीठिका पर भाषागत मूल प्राकृतिक ग़ज़ल के कुछ शेर—

भोगना है शाप अब यह क्रूर कृतघ्न आदमी

पेड़वाले पूर्वजों पर आरियां रखता गया

प्राण लेकर वह निरीहों-निरपराधियों के, वहां

करुणतम, बेचारगी, लाचारियां रखता गया

चंद्रसेन विराट की हिंदी ग़ज़ल का एक रूप है—दो शेर! उनकी अधिकांश ग़ज़लों में हिंदी तो होती है, ग़ज़ल नहीं होती। लेकिन जब वो सहजता से शेर कहते हैं तो शेर अधिक संप्रेषणीय और गहरी संवेदना के साथ पाठक तक पहुंचते हैं, यथा—

दोपहर की धूप ने बड़िया रखी दालान में

शाम आएगी दबे पाओं उठा ले जाएगी

नाव कागज़ की, घरोंदा, शंख, घोंघे, सीपियां

एक आएगी लहर सब कुछ बहा ले जाएगी

फल रहा है पेड़ ये अमरुद का पहली दफ़ा

फल पके तो पास की लड़की चुरा ले जाएगी

हिंदी ग़ज़ल की भाषा अंततः इसी भाषा को होना है। यह भाषा हमारे समाज की भाषा है और हमारे आधुनिक साहित्य की भी।

नूर मुहम्मद नूर—‘नागरी ग़ज़ल में जनवादी चेतना’ लेख में बड़े पते की बात कहते हैं—उर्दू फ़ारसी के भारीभरकम अलफ़ाज़ और तत्सम

हिंदी ग़ज़ल में हम जिस भाषा का होना लाज़मी समझते हैं उसी बोलचाल की भाषा की ताईद बशीर बद्र भी करते हैं। नूर मुहम्मद नूर भी करते हैं। देवेन्द्र आर्य भी करते हैं। बहरहाल, बशीर बद्र के कुछ शेर उनकी भाषा संबंधी विचारों की पुष्टि हेतु। बशीर बद्र जिस बोलचाल की ज़बान का वासता देते हैं, उसी ज़बान में शेर कहते भी हैं।

शब्दावली से इसे (हिंदी ग़ज़ल को) बेनियाज़ बनाया जाए। वह भाषा अपनाई जाए जो मामूली आदमी बोलता है। इसे अनपथ पर रखा जाए न कि ग़ज़पथ पर। प्रतीक देशी हों और मुहावरे भी। आग दिल की हो न कि किन्हीं परियों और ...पानी इनमें आंख का हो और पैरों के नीचे की मिट्टी अपनी।”

(‘साहित्य भारती’ ग़ज़ल अंक-2005)

नूर मुहम्मद नूर ने अपनी बात भी प्रतीकों और उपमाओं में व्यक्त की है लेकिन भाषा के प्रति उनका नज़रिया बेहद साफ़ है। वो न तो फ़ारसी के हिमायती हैं न शुद्ध हिंदी ग़ज़ल के। मामूली आदमी की भाषा, ग़ज़ल की भाषा हो, उनका यह विचार समानजनक है।...इसी भाषागत साफ़गोई पर उनके कुछ शेर—

पांव रक्खें तो कहां रक्खें बताएंगे हज़ूर

आपकी धरती तो इतनी दलदली पहले न थी

अब तो यमुना के किनारे भी बहुत वीरान हैं

कृष्ण तेरी बांसुरी यूँ बेसुरी पहले न थी।”

तथा

ज़िंदगी जब-जब भी आएगी मेरी दहलीज़ पर

मांग कर मुझसे वो थोड़ा हौसला ले जाएगी”

इस भाषा का समर्थन प्रयोगधर्मी ग़ज़लकार देवेन्द्र आर्य भी करते हैं। उनके अनुसार—भाषा में हो रही या हो चुकी तब्दीलियों पर बहस होनी चाहिए, परंतु इनसे मुंह नहीं चुराया जाना चाहिए।...शायरी को भाषा की शुद्धता के प्रति उतना ही आग्रही होना चाहिए जितने के आगे वह दुराग्रह न बन जाए। भाषाई, इल्मी और फन्नी दुराग्रह भी हमें कुंद और कमज़ोर करते हैं।”

(किताब से बाहर—भूमिका)

देवेन्द्र आर्य के दो शेर—

नदी-सा ज़ेहन में बहते रहे हो आज तलक

पसीना बन के कभी जिस्म पे बहो, तब तो!

बुलंदियों के लिए क्या नहीं सहा तुमने

बुलंदियों पे मगर ठहर भी सको, तब तो!”

भाषा संबंधी अपने अनुभवों से छनकर आए विचार बशीर बद्र के गौरतलब हैं। वो उर्दू के शायर हैं लेकिन भाषा के प्रति उनके विचार कहीं से संकीर्ण नहीं हैं—

‘ग़ज़ल की ज़बान के लिए ये समझना चाहिए कि आज जिस लफ़्ज़ को पढ़े-लिखे लोग, अपनी गुफ़्तगू में रखते हैं, उसी के ग़ज़लियत हुस्न से, ग़ज़ल का शेर कहा जा सकता है। जो लफ़्ज़ मर जाता है और वक्ता की याददाश्त में दफ़न हो जाता है, वो चाहें कितना बड़ा और मानीखेज़

शब्द हो, उससे ग़ज़ल का शेर नहीं बनाया जा सकता। इस चार सौ साल के तजुबे से ये साबित होता है कि वही शब्द ज़िंदा रहते हैं जो पूरे मुल्क में चलते-फिरते हैं। इसलिए सैकड़ों बरस पुराने शब्द जो बच्चों की तरह चल-फिर रहे हैं, वे भी ग़ज़ल में शामिल हैं। ग़ज़ल ज़िंदगी का मासूम नम्र है। और ग़ज़ल में संस्कृत, फ़ारसी, अरबी के भारी-भरकम शब्दों का आदर तो किया जा सकता है, लेकिन उनसे गुप्तगू नहीं की जा सकती। ग़ज़ल की ज़बान सिर्फ़ बोलचाल की ज़बान है।¹¹

हिंदी ग़ज़ल में हम जिस भाषा का होना लाज़मी समझते हैं उसी बोलचाल की भाषा की ताईद बशीर बद्र भी करते हैं। नूर मुहम्मद नूर भी करते हैं। देवेन्द्र आर्य भी करते हैं। बहरहाल, बशीर बद्र के कुछ शेर उनकी भाषा संबंधी विचारों की पुष्टि हेतु। बशीर बद्र जिस बोलचाल की ज़बान का वासता देते हैं, उसी ज़बान में शेर कहते भी हैं—इस ज़बान को कोई चाहे तो उर्दू ज़बान कहे, कोई चाहे तो हिंदी—

शोहरत की बुलंदी भी पलभर का तमाशा है
जिस डाल पे बैठे हो वो टूट भी सकती है

लोग टूट जाते हैं एक घर बनाने में
तुम तरस नहीं खाते बस्तियां जलाने में

दुश्मनी जमकर करो लेकिन ये गुंजाइश रहे
जब कभी हम दोस्त हो जाएं तो शर्मिदा न हों।¹²

निदा फ़ाज़ली तो भाषा के प्रति और भी ज्यादा स्पष्ट और दृढ़ विचार रखते हैं। बशीर बद्र हों या निदा फ़ाज़ली, ग़ज़ल की ज़बान को लेकर इनके विचार परिपक्व अनुभवों से छनकर आए हैं। दोनों उर्दू के महत्त्वपूर्ण शायर हैं और दोनों उर्दू की र्वायत के साथ-साथ, हिंदी ग़ज़ल (और उर्दू ग़ज़ल) के आधुनिकता बोध को भी समझते हैं। निदा फ़ाज़ली के विचारों में दृढ़ता के साथ-साथ वैज्ञानिक सोच भी है। वो कहते हैं—

मेरी नज़र में उर्दू और हिंदी ग़ज़ल में कोई अंतर नहीं। यहां तक कि पाकिस्तान और हिंदुस्तान, दोनों मुल्कों में, एक ही भाषा में लिखी जा रही हैं। अंतर है तो सिर्फ़ लिपि का। आज की ग़ज़ल में वही भाषा उपयोग में लाई जा रही है, जो कहानी की भाषा है—यानी आम बोलचाल की भाषा! पंडिताऊ भाषा का अब कोई स्थान नहीं है। एक विशेष वर्ग की भाषा होती है, एक जन की भाषा! साहित्य वहीं ज़िंदा रहता है जो 'जनभाषा' में हो।¹³

ग़ज़ल में जिस जनभाषा में वो अपनी बात कहते हैं, उसी जनभाषा में रची गई उनकी एक ऐसी ग़ज़ल जो कबीर की ज़मीन पर लिखी गई है। (निदा फ़ाज़ली के इस प्रयोग का ख़ैरमक़दम)

ये दिल कुटिया है संतो की यहां राजा भिखारी क्या
वो हर दीदार में ज़रदार है, गोटा-किनारी क्या?

सभी के सामने इक आईना है अपनी सूरत का
उसी सूरत की सबको जुस्तजू है, यार-यारी क्या

ये काटे से नहीं कटते ये बांटे से नहीं बंटते
नदी के पानियों के सामने आरी-कटारी क्या

उसी के चलने-फिरने हंसने-रौने की हैं तस्वीरें
घटा क्या, चांद क्या, संगीत क्या, बादे-बहारी क्या

हमारा 'मीर जी' से मुतफिक होना है नामुमकिन
उठाना है जो पत्थर इश्क का तो हल्का-भारी क्या

उर्दू के जदीद शायरों ने न सिर्फ़ कथ्य में नवीनता लाने की कोशिशें की बल्कि भाषा को इतना सरल बनाया कि वो जदीद हिंदी उर्दू ग़ज़ल जनसाधारण की भाषा में व्यक्त होने लगी। शहरयार ने भाषा संबंधी एक सवाल ('वसुधा' पत्रिका में साक्षात्कार के दौरान) के जवाब में कहा कि वो न उर्दू में लिखते हैं न हिंदी में। वो उस ज़बान में लिखते हैं जिस ज़बान को साधारण मनुष्य समझता है।

उर्दू के आधुनिक ग़ज़लकारों ने अपनी नई भाषा को विकसित किया है। वो भाषा जनभाषा है जो ग़ज़ल में अभिव्यक्ति का सशक्त माध्यम बनकर उभरी है। वहां न भाषागत संकट है न भाषागत द्वैत! संकट हिंदी के उन ग़ज़लकारों में है जो हिंदी को अतिहिंदी ग़ज़ल बना देना चाहते हैं। ग़ज़ल के विकास के लिए कुछ ठोस कार्य होने चाहिए थे। वे नहीं हुए। ग़ज़ल को हिंदी ग़ज़ल और फिर शुद्ध हिंदी ग़ज़ल बनाने में एक होड़-सी लगी है।

शुद्ध हिंदी ग़ज़लों में और कुछ नहीं हिंदी ज़रूर है। शुद्ध हिंदी ग़ज़लकारों की ग़ज़लें पढ़ते हुए यह अहसास निरंतर होता है कि ये ग़ज़लकार ग़ज़लें नहीं लिखते, हिंदी लिखते हैं। एक ऐसी हिंदी जो हमारे व्यवहार, हमारे जीवन, हमारे समाज से रूख़सत हो चुकी है। जिस अति हिंदी में ये ग़ज़लकार ग़ज़लें लिख रहे हैं, वो हिंदी कथा-कहानी और उपन्यास की भी नहीं बन सकी।

संदर्भ

1. साथे में धूप-दुष्यंत कुमार, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली
2. साहित्य सागर, अंक अप्रैल-2002, 3. वही
4. अंचल भारती सं. डा. जयनाथ मणि त्रिपाठी (अंक 69-70)
5. हिंदी ग़ज़ल ग़ज़लकारों की नज़र में, सं. सरदार मुजावर, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली
6. साहित्य भारती, अतिथि संपादक, अशोक रावत (जून 2005)
7. उपरोक्त, 8. उपरोक्त
9. किताब से बाहर—लेखक देवेन्द्र आर्य 10. उपरोक्त
11. साहित्य सागर, ग़ज़ल अंक, अप्रैल-2002, 12. उपरोक्त
13. आधारशिला ग़ज़ल विशेषांक, अतिथि संपादक, कमलेश भट्ट कमल (अंक 44)
14. काव्या, संपादक हस्तीमल हस्ती अंक
15. प्रगतिशील समाज सं. भारत यायावर (अंक 2)
16. युगीन काव्या सं. हस्ती मल हस्ती अंक-29
17. हिंदी ग़ज़ल एक प्रतिमान सं. ज्ञानेन्द्र (1995) चंदा प्रकाशन, मुंगेर
18. हिंदी ग़ज़ल एक प्रतिमान सं. ज्ञानेन्द्र (1995) चंदा प्रकाशन, मुंगेर
19. प्रयास, संपादक अशोक अंजुम (अंक-25)
20. प्रज्ञा, ग़ज़ल अंक अतिथि, सं. शिवओम अम्बर (अंक-4)
21. प्रयास, (अंक-24) सं. अशोक अंजुम

संपर्क : 1875, सेक्टर-6, बहादुरगढ़-124507 (हरियाणा)

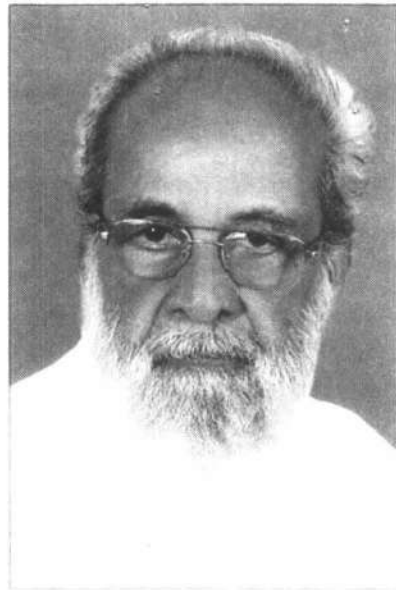
सृजनशीलता ईश्वरीय वरदान है

मलयाली-हिंदी के लब्धप्रतिष्ठ साहित्यकार एन. चन्द्रशेखरन नायर से राजेन्द्र परदेसी की बातचीत

प्रश्न : पहले हमारी युवा पीढ़ी आपके व्यक्तिगत जीवन के बारे में कुछ विशेष प्रेरणापरक बातें जानना चाहेगी, जहां आपका बचपन बीता वहां का वातावरण कैसा था? आपको लिखने की प्रेरणा कहाँ से मिली? आपकी प्रथम रचना कब और कहाँ प्रकाशित हुई?

उत्तर : मेरा जन्म-स्थान शास्तामोड्टा नामक एक गांव में है। कई कारणों से वह गांव मशहूर है। एक कारण है उसका प्राकृतिक सौंदर्य, शस्य-श्यामल प्रदेश और शुद्धजल से भरे एक विशाल एवं अथाह तालाब से वलयित रमणीय स्थान। तालाब का घेरा कहीं पचास से ज्यादा किलोमीटर होगा। इस तालाब के चारों तरफ के गांव भी अनेक हैं। तालाब की गहराई भी ऐसी है, जिसका नापना भी कष्टसाध्य है। एक सुंदर शास्तामंदिर, एक प्रसिद्ध व्यापार केंद्र और दो संघ के वानर-देवालयी संघ और व्यापार केंद्र वाला और दोनों संघों के बीच समय-समय पर घमासान लड़ाई! यही मेरा शास्तामोड्टा गांव है। दूसरे किनारे पर जाने में नाव की व्यवस्था है। जब मैं चौदह का था वहां के मलयालम सातवें बर्ग तक की पाठशाला थी, जहां से मैंने वर्नाक्युलर मिडिल स्कूल तक का अध्ययन किया था। प्रथम बार पास हुआ। यही स्कूली अध्ययन मेरा औपचारिक अध्ययन केंद्र रहा था। बाद में एक हिंदी प्रचारक के. राघवन के साथ हिंदी का पठन शुरू किया। वे मद्रास हिंदी प्रचार सभा के प्रमाणित प्रचारक थे। उन्होंने मुझे पहली, दूसरी राष्ट्र इन तीनों परीक्षाओं में बिठाकर पास कराया। शेष प्रवेशिका, विशारद परीक्षाओं में स्वयं पढ़कर विजयी हुआ। जब राष्ट्रभाषा पास हुआ तब पास वाले एक रेसिडेंशियल अंग्रेजी हाईस्कूल में हिंदी पंडित का एक काम मिला तीन महीने के लिए। इस बीच 15 अगस्त 1947 का दिन आया। प्रिंसिपल डा. सी. टी. ईपन स्वातंत्र्य दिन मनाने के विपरीत थे। मैंने उनकी आज्ञा के विपरीत स्वाधीनता दिवस मनाया। सारे विद्यार्थी उपस्थित थे। सम्मेलन के उपरांत एक अन्य सम्मेलन तक छात्रों का जुलूस भी चलाया और छात्रों को वापस कर दिया। इस घटना के पश्चात् उस स्कूल की नौकरी छोड़ दी। मेरे लिए स्वतंत्र देश का संकल्प सबसे ऊपर था।

मेरे पिता एक कुलीन परिवार के किसान थे। श्री नीलकंठ पिल्ले। माताजी ईश्वरीय आराधना को सब कुछ मानने वाली ग्रामीण नारी जानकी अम्मा। इस घटना के एक वर्ष बाद मैं विशारद परीक्षा में पास हुआ और पुनलूर हाईस्कूल का हिंदी पंडित बना। वहां से मद्रास मेट्रिक्युलेशन परीक्षा दी। पालयकोट जाकर लिखा पास हुआ 30 छात्रों में तीन और



मैं भी उसमें आया। पुनलूर हाईस्कूल छोड़कर त्रिवेंद्रम वाले शास्तामंगलम हाईस्कूल में मास्टर बना और वहां से 10 अक्टूबर, 1951 को महात्मा गांधी कालेज में ट्यूटर बना।

स्कूल का पठन समाप्त था और अपने सहपाठी मित्र की दूकान की खाली कुर्सी पर बैठकर वहां आने वाली मलयालय पत्र-पत्रिकाएं पढ़ा करता था और अक्षरश्लोक मत्सर के लिए प्रसिद्ध कवियों की काव्य-रचनाएं कंठस्थ कहता था। कविता पाठ के अध्ययन के आवर्तन ने शायद कविता लिखने में प्रेरणा दी होगी। पर प्रारंभिक परिश्रम उपयोगी न पाने से फाड़ दिया करता था। सन् 1951 अक्टूबर को महात्मा गांधी कालेज की नियुक्ति के साथ साहित्य की ओर सर्वाधिक ध्यान गया था। मलयालम में कविता, कहानी, नाटक, लेख आदि बराबर प्रकाशित करता था। मलयालम राज्यम, देवस्वम पत्रिका, वनिता, देशबंधु, मनोरमा, मलयाली आदि अखबारों एवं पत्रिकाओं में निरंतर मौलिक रचनाएं प्रकाशित करता रहा। मलयाली पत्र के रविवार अंक में रामचरित मानस का मलयालम अनुवाद पूरे पृष्ठ पर विशेष रेखांकन के साथ छपता रहा था दो वर्ष तक। 'देवस्वम' पत्रिका में भी उसका पुनः प्रकाशन आता था।

हिंदी में मेरा प्रथम शोध-लेख आगरा विश्वविद्यालय हिंदी विद्यापीठ का मुख-पत्र 'भारतीय साहित्य' में प्रकाशित हुआ, 'मलयालम साहित्य में

ऐतिहासिक उपन्यास' शीर्षक से। यह उस समय मेरे लिए प्रेरणादायक घटना थी क्योंकि प्रस्तुत विषय पर विद्यापीठ केरल के पच्चीस लेखकों से सामग्री यानी उक्त विषय पर लेख मांगे थे। उन पच्चीसों में से मेरा लेख ही प्रकाशन योग्य माना और उसे ही ग्रंथ में 1956 में प्रकाशित किया था। (मेरा संपूर्ण साहित्य करीब पचास हजार पृष्ठों में यानी 53 ग्रंथों में अथवा 50 से अधिक पत्र-पत्रिकाओं में फैला पड़ा है, जिसमें शोध-सामग्री पच्चीस हजार पृष्ठों में आएगी। मतलब यह है कि यह प्रथम अनुभव एक शुभ सूचना के रूप में आज भी प्रत्यक्ष महसूस हो रहा है।

मेरा प्रथम नाटक द्विवेणी वर्धा से निकलने वाली पत्रिका 'राष्ट्रभारती' में प्रकाशित हुआ सन् 1961 को।

आप मूलतः मलयाली भाषा-भाषी हैं, आपका हिंदी भाषा और साहित्य की ओर रुझान कैसे हुआ?

गांधी जी का आह्वान था कि "हिंदी पढ़ना और उसका प्रचार करना देशसेवा है"। उस समय गांधीजी मेरे जीवन के नियामक रहे थे। देश की सेवा हिंदी पढ़ने और प्रचार करने से हो सकती है, तो उसे मानना अपना धर्म माना था। पढ़ा, चार वर्ष तक प्रचार किया। मद्रास हिंदी प्रचार सभा का प्रामाणिक प्रचारक भी रह चुका हूँ। मेरे प्रथम हिंदी लेखों और रचनाओं की बड़ी मान्यता प्राप्त हुई। तभी अनुभव हुआ कि हिंदी में लिखने से एक विस्तृत वातावरण यानी भारत भर रचना पढ़ी जाएगी। वास्तव में हिंदी की ओर अधिकाधिक झुक गया और मलयालम से न्यूनाधिक निवृत्त भी होता गया। फिर भी आश्वासन सही था कि भारतीय संस्कृति में रंगा हुआ होने से नई-नई उद्भावनाओं का स्रोत तीव्रतर होता गया।

एक सृजनशील साहित्यकार की हैसियत से सृजन के बारे में आपके मौलिक विचार क्या हैं?

सृजनशीलता वस्तुतः ईश्वरीय वरदान है। कवि तो बनाया नहीं जाता, वह बनता है। वाल्मीकि, व्यासदेव, कालिदास, रवीन्द्रनाथ ठाकुर, जैसे स्वरूपों का संकल्प सृजन के उपक्रम में आता था जिन्होंने संस्कृति का आह्वान किया था। देशीय संस्कृति का उन्मेष कालातीत रंजना है। हम अपनी संस्कृति को जितनी ही संजोए रहें, हम और हमारी संस्कृति जगत की धन्यता पल्लवित करती रहेंगी। मेरी संपूर्ण रचनाएं इस ओर ध्यान दिलाने वाली हैं। हाल में रचित 'चिरजीव महाकाव्य' तक।

आपकी लिखी रचनाओं की मुख्य प्रवृत्तियां क्या हैं? इस संदर्भ में विस्तार से कुछ बताएंगे?

मेरी रचनाओं की मुख्य प्रवृत्तियां देशीय संस्कृति को बहुआयामी साहित्यिक विधाओं में अभिव्यक्त करना है। समाज, राजनीति, धर्म, वेदांत, इतिहास, साहित्यिक इतिहास, धार्मिक एवं विशिष्ट व्यक्तित्वों का जीवन वृत्त आदि हैं। मेरी कहानियों और उपन्यास एवं नाटकों की वस्तु समाज, राजनीति, धर्म आदि हैं। जीवनीयों में धर्म, वेदांत, इतिहास, विशिष्ट व्यक्तियों का जीवनवृत्त आदि है। उपन्यास में पुराण कथा, समाज, राजनीति आदि हैं। साहित्यिक इतिहास मेरा ठोस विषय है। केरल के हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास इस दिशा का ज्वलंत उदाहरण है।

भारत में इस विषय पर किसी प्रांत का इतिहास नहीं आया है। हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास इस दिशा का ज्वलंत उदाहरण है। भारत में इस विषय पर किसी प्रांत का इतिहास नहीं आया है। हिंदी साहित्य का बृहद् इतिहास प्रादेशिक तल पर आई उपलब्धियों का भी आकलन जब संभव हो तभी पूर्ण होगा।

आपने गद्य और पद्य दोनों में लिखा है, फिर भी कौन-सी विधा आपको सर्वाधिक सहज और मनोरम लगती है?

आपका प्रश्न मारके का है। गद्य, पद्य एवं गद्य कविता की मेरी रचनाएं अनेक हैं। भाषा शैली की दृष्टि से प्रत्येक विधा की रचना मेरे लिए कोई अत्युक्ति नहीं, सहज एवं मनोरम है। नाटक, उपन्यास, कहानी, लेख, शोध आदि रचनाओं की संरचना का वैविध्य मेरे लिए अनायास एवं सहज जैसा है, यही अनुभव है।

उदाहरणार्थ कतिपय प्रमाण: गद्यकविता 'गुरु चरणों' में राष्ट्रकवि रवींद्रनाथ ठाकुर पर अगस्त 1960 में लिखी है। देशबंधु पत्रिका के प्रथम अंक में प्रकाशित। संपादक प्रसिद्ध नाट्याचार्य का अभिमत—“चन्द्रशेखरन जी, आपकी गद्य कविता 'गुरु चरणों' में अत्युग्र बनी है”। इस गद्य कविता का हिंदी, अंग्रेजी आदि अनेक भाषाओं की पत्रिकाओं में अनुवाद प्रकाशित हुआ और अब भी प्रकाशित हो रहा है।

कविता के बारे में (1994) कविताएं देशभक्ति की—“पिछले 25 वर्षों से विदेश में रहकर तथा यूरोप, उत्तरी-दक्षिणी अमेरिका, चीन आदि देशों में घूमकर मैंने पश्चिम की संस्कृति को बहुत पास से देखा है। मूल्य वहां सिमट गए हैं। धन, वैभव एवं...में। हां, सभ्यता निखरी है। मानवता, चरित्र तथा संस्कृति का हनन हुआ है। भारत में रहकर हमें वहां की सभ्यता की श्रेष्ठ बातों का, अपनी सभ्यता संजोकर सुख प्राप्त कर सकते हैं। इस काव्य-संकलन की यही आत्मा है।” —डॉ. भूदेव शर्मा, प्रोफेसर एक्सायियर विश्व विद्यालय, अमेरिका।

मेरी रचनाओं में अति प्रशंसित विधा नाट्य-रचनाओं का है। 'देवयानी' (1971) नामक मेरी नाट्य-रचना पर करीब दो सौ से ज्यादा साहित्यिकारों ने प्रशंसित लेख प्रकाशित किए हैं। मगध विश्वविद्यालय में प्रो. डिग्री का पाठ्यक्रम रहा था और उसको केंद्र सरकार का प्रथम पुरस्कार भी प्राप्त हुआ है। दिल्ली के नव भारती सहकार प्रकाशन प्रतिष्ठान द्वारा प्रकाशित प्रस्तुत रचना की भूमिका डा. नत्थन सिंह ने 50 पृष्ठों में लिखी है। हिंदी के प्रसिद्ध रचनाकारों की कृतियों से उसकी तुलना करके उसकी बढ़ी हुई विशिष्टता को चित्रित किया है, जैसे “देवयानी प्रसाद तथा मोहन राकेश की ऐतिहासिकतापरक नाटक-परंपरा को विकसित करती है, हिंदी नाटक-जगत में परिख्याप्त कलात्मक निरर्थकता तथा रूपगत हीनता की सीमाओं का विच्छेदन करती है और साथ ही, सार्थक एवं कलात्मक सुखांत नाटकों के अभाव का निवारण करती है। इस विवेचन के आधार पर, विश्वासपूर्वक कहा जा सकता है कि एन. चंद्रशेखरन नायर की नाट्य-कृति 'देवयानी' का न केवल हिंदी-नाटक-साहित्य में ही महत्वपूर्ण स्थान है, वरन् देश की अन्यान्य भाषाओं के साहित्य में भी श्रेष्ठ कृति निर्धारित होगी।”

मेरा शोध प्रबंध 'हिंदी और मलयालम के दो प्रतीकवादी (सिंबॉलिक) कवि' महाकवि पंत और शंकरकुरुप को आधार बनाकर लिखा गया है। उस ग्रंथ की भूमिका स्वयं सुमित्रानंदन पंत ने ही लिखी है। इसमें अपनी लंबी भूमिका के अंत में पंतजी ने लिखा है—“इस ग्रंथ में अपने विषय के सभी पहलुओं का गंभीर एवं व्यापक अध्ययन मिलता है। अनेक वर्षों से लेखक अपने विषय का अध्ययन करता आया है। वस्तुतः एक दक्षिणात्य विद्वान के द्वारा यह ग्रंथ हिंदी साहित्य ही नहीं, अपितु समस्त भारतीय साहित्य के लिए एक विशिष्ट देन है। मैं मनीषी लेखक को हार्दिक बधाई देता हूँ।” यू.जी.सी. द्वारा प्रकाशित 548 पृष्ठों का यह ग्रंथ भारत के विश्वविद्यालयीन शोध-प्रबंधों में सर्वाधिक प्रशंसा-प्राप्त है।

मेरे महाकाव्य (चिरजीव महाकाव्य) के ऊपर भारत के शीर्षस्थ पचास से अधिक साहित्यिक मनीषियों ने प्रशंसात्मक लेख प्रकाशित किए हैं। कुछ विद्वानों के विचार यहां प्रस्तुत किए जा सकते हैं। डॉ. प्रो. सुंदरलाल कथूरिया, दिल्ली—“एक वाक्य में चिरजीव महाकाव्य” राष्ट्रीय सांस्कृतिक चेतना का उदात्त महाकाव्य है। यह परिपक्व आयु के महाकवि की एक ऐसी परिपक्व रचना है कि जिसमें वैयक्तिक, सामाजिक, राष्ट्रीय-सांस्कृतिक एवं आध्यात्मिक मूल्यों का अद्भुत समाहार हो गया है। इस नूतन कल्पना मंडित अद्भुत मिथकीय महाकाव्य का हिंदी जगत में भरपूर स्वागत होगा। डॉ. भूपेन्द्र कुमार सिंह, लेखनऊ, “भाषा शैली की दृष्टि से यह महाकाव्य सुपाच्य एवं विचार प्रधान है।” डा. नायर जी को भरिशः धन्यवाद। निश्चित रूप से यह महती कृति साहित्य के कोष को चिरकाल तक समृद्ध करती रहेगी। डा. बी.एल. वत्स, आगरा : भारत सहित संपूर्ण विश्व आज आस्था संकट से गुजर रहा है। डा. नायरजी ने अपनी विस्तीर्ण अनुभव से इस आस्था के संवर्धन हेतु चिरजीव की रचना की है, जो अभिनंदनीय एवं स्तुत्य है डा. वीरेंद्र शर्मा दिल्ली : ‘चिरजीव महाकाव्य-कलियुग की अमृत कथा है।’ डा. बालशौरि रेड्डी। डॉ. नायरजी न केवल एक बहुचर्चित रचनाकार हैं, अपितु वे उच्चकोटि के चित्रकार भी हैं। काव्य में चित्रांकन की कला आद्यंत लक्षित होती है। प्रो. अर्जुन शतपथी, उड़ीसा—‘चिरजीव महाकाव्य महाकाव्यों का महाकाव्य है।’

क्या आपकी कृतियों में आपके निजी व्यक्तित्व को भी स्थान मिला है, आपने स्वयं को भी किसी-न-किसी तरह प्रस्तुत किया है?

साहित्य की कोई भी अभिव्यक्ति चाहे वह ध्वन्यात्मक हो अथवा भावात्मक या वर्णनात्मक कृतिकार का परिचय वह स्वयं देगी ही। यदि यह क्षमता उस कृति में नहीं है, तो कभी वह पहचाना नहीं जाता और साहित्य सेवी भी नहीं होता। यहां अपने ‘आपने स्वयं को प्रस्तुत किया है?’ (हां, मैंने अपनी आत्मकथा प्रकाशित की है (मलयालम में))। हिंदी में कौसल्या अम्माल ने उसका अनुवाद कर प्रकाशित किया है। अनेक विद्वानों द्वारा साक्षात्कार हुआ। वे सब प्रकाशित भी हुए हैं। रुक्माजि राव अमर, डा. प्र. निदारिया, डा. पी. लता, प्रो. तंकपण नायर, डा. एस. तंकमणि अम्मा, डा. वी.वी. विश्वम आदि उनमें कुछ हैं।

आपने हिंदी और मलयाली ग्रंथों की रचना की है, आपके विचार से आपके कौन-से ग्रंथ सर्वाधिक लोकप्रिय हुए?

मेरे ग्रंथों में अनेक लोकप्रिय हुए हैं। ऊपर कहा जा चुका है कि उनके वैशिष्ट्य के कारण मैं एक साहित्यकार के रूप में आज माना जाता हूँ। हिंदी और मलयालम की अनेक रचनाएं ऐसी होती हैं, जो कालजयी मानी गई हैं। अध्यात्म रामायण का मलयालम भाषांतरण जब लोगों के सम्मुख आया तब असंख्य विद्वानों से सामूहिक चर्चाएं चलाईं। मेरा आदर सम्मान हुआ। मलयालम के मूर्धन्य लेखक मुझे अध्यात्म रामायण के (मलयालम) प्रणेता बन्दनीय एषुतय्यन के साथ तुलना करके लेख भी लिख चुके हैं। वह ग्रंथ ‘अध्यात्म रामायण’ मलयालम भाषी सारी जनता तक पहुंचाने की योजना भी कार्यान्वित हो सकती है, योजना चल रही है। देवयानी असंख्य भाषाओं में भाषांतरित हो चुकी है। उसी प्रकार ‘डा. नायर जी की निबंध रचनाएं’, जिसे भूमिकाकार काशी विश्वविद्यालय हिंदी प्रोफेसर डा. श्यामसुंदर शुक्लजी ने एक लघु विश्वकोश स्थापित किया है, काफी लोकप्रिय हैं। उसमें संकलित 55 लेख उनकी ही स्तरीय पत्रिकाओं में प्रकाशित हैं और वे सब साहित्य, संस्कृति, राजनीति, कोष, इतिहास इत्यादि अपूर्व विषयों में प्रतिपादित हैं।

आजकल ढेरों साहित्य लिखा जा रहा है, पर उसके कालजयी और सार्थक होने की स्थिति पर प्रायः प्रश्नचिह्न लगते हैं। उस संदर्भ में आपके क्या विचार हैं?

आपकी शंका सही है। आज साहित्य का स्थाई भाव संकट में है। कालजयी साहित्य की कल्पना भी अरोचक है। कविता ढेरों लिखी जाती हैं। भावों का दारिद्र्य कविता को केवल दिल्ली बना लेता है। काव्य निर्माण में अथाह ऐकांतिक ध्यान की अपेक्षा अनुभूत होती है। केवल अर्थहीन शब्दों के खेल को कविता मानें, यह काल का दोष है, काल ही इस अभावग्रस्त शून्यता को भर देगा। इस दरम्यान एक महाकाव्य लिखना क्या साहस है? ‘चिरजीव महाकाव्य’ को सही दृष्टि से देखें कि वह कालजयी है, केवल ‘साहस’ है।

आज का साहित्यकार किसी-न-किसी रूप में राजाश्रय पाने की दिशा में सोचने लगा है, आपके विचार में कहां तक यह साहित्य के हित में है?

आप जानना चाहते हैं कि राजाश्रय सही संकल्प है कि नहीं। हमारा देश कालिदास जैसे अक्षरेश्वरों की कथा से संपन्न है। आज कालिदास का जमाना नहीं है। पद्म पुरस्कारों की आशा से साहित्य और ‘अपेक्षित परिश्रम’ करने वाले चतुर विद्वान अपनी निजी योग्यता को प्रकाशित करते ही रहते हैं। ऐसे विद्वानों को अनुभवों के दिशासंकेत काफी हैं। हमारी सरकार भी ऐसे विद्वानों को आकाश पर बिठाकर संतुष्ट हो जाती है। जिस कवि ने गंगा और हरिद्वार इन शब्दों का प्रयोग अपनी कविता में कहीं नहीं किया है उसे पद्मविभूषण पुरस्कार देकर कालिदास बना दिया है। वह पुण्यभूमि भारत का कवि है, जिसने गंगा और हरिद्वार ये दो शब्द नहीं सुने हैं। आश्चर्य-आश्चर्य!! सरकार चाहे पुरस्कार दे पर कवि को चाहिए कि वह अपने को माने और अपनी मिट्टी का नमक मान ले।

आप उत्तर-दक्षिण के सेतु के रूप में जाने जाते हैं। साथ ही प्राचीन साहित्य और वर्तमान के भी आप सेतु माने जा रहे हैं। उस

उपलब्धि पर आपके क्या विचार हैं?

उत्तर के कई साहित्यकारों और राजनीतिक नेताओं ने आपके विचारों से सहमती प्रकट कर ली है। डा. वीरेंद्र शर्मा, डा. विष्णुदत्त राकेश, डा. धर्मपाल मैनी, डा. स्वदेश भारती, हरिहरलाल श्रीवास्तव, डा. रामसनेही लालशर्मा जैसे सौ-सौ मूर्धन्य साहित्यकारों ने मुझे केरलीय प्रेमचंद, केरलीय तुलसीदास, केरलीय प्रसाद, केरलीय गांधी, भारत के भारतेंदु, भारतीयता संरक्षक, उत्तर और दक्षिण के सेतु डा. नायर (निर्मला देशपंडे), भारतीय अस्मिता के प्रहरी (विष्णु प्रभाकर), साहित्य साधक (विजयेन्द्र स्तानक), बहुआयामी प्रतिभा के धनी (अमरसिंह बधान), भारतीयता के संरक्षक (नत्थन सिंह), भारतीयता के प्रहरी, अक्षर आराधक (क्षेमचंद्र सुनन), कवित्व का प्रतीक (नलिनीकांत), प्रज्ञापुरुष (अर्जुन शतपथी), हिंदी के महानायक डा. नायर (मंगलप्रसाद), केरल के संत साहित्यकार (वृंदावन त्रिपाठी रत्नेश)।

उपर्युक्त असंख्य अलंकृत अक्षरों का प्रसाद अंतरस्थ चेतना स्वरूपिणी ने जो कृपया दिया है वह सारा उन्हीं के श्रीचरणों पर समर्पित है। सत्तर वर्षों का पुराना साहित्य जो थोड़ा-बहुत अध्यात्म से रंगा हुआ था वह आज भी नवीन-सा लगता है, क्योंकि आत्मा का भाव नित्य नवीन है ही। शैलीगत भिन्नता तो हर समय की अपनी है, जिससे आकर्षण की गुंजाइश है। मैथिलीशरण गुप्त प्रसाद जैसे कवियों के भावजगत से प्रेरित मुद्र जैसे लेखक आज का काव्य कभी प्रसन्न करें तो मानना पड़ेगा कि वे मन से हृद तक कहीं मुक्त हो चुके हों। संस्कृति और साहित्य समयानुकूल रहें तो उन्हें दोषी क्यों कहा जाए! आज संघर्ष ही जीवन का जहां ध्येय बना हुआ है जिसमें जितना अधिक डूब जाता हो उतना अधिक आत्मा से दूर होता जाना स्वाभाविक है। शांति को दृढ़ लेना मन का लक्ष्य जब नै, तो दुबारा गीता एवं उपनिषदों में आश्रय ले सकता है।

आप दीर्घकाल से साहित्य के सृजन में संलग्न हैं, प्रभूत सृजन भी किया है, आपके साहित्य का जो मूल्यांकन हुआ है या हो रहा है, उससे आप कहां तक संतुष्ट हैं?

गत सत्तर वर्षों से साहित्य विद्यार्थी हूं। दो हजार से ज्यादा रचनाएं माध्यमों में आई हैं। इन सबका उपयोग पत्रिकाओं, ग्रंथों, अभिनंदन साहित्यों में फैला पड़ा है। पचास से अधिक ग्रंथ निकले हैं, सारी साहित्यिक विधाओं में। उनकी चर्चाएं खूब हुई हैं, और हो रही हैं। देशभर के माध्यमों में अखबारों में मेरे ग्रंथों का मूल्यांकन सुचारु रूप से हुए हैं। यह साहित्यजीवी के लिए आश्वासन की बात है। आज हिंदी साहित्य के क्षेत्र में बहुचर्चित, बहुमानित साहित्य सेवी हूं। मानना पड़ता है, शायद यही कारण होगा कि आज भी भूमिका लेखन के लिए स्तरीय लेखक भी मेरे पास आते हैं। 60 से अधिक अवतरणिकाएं लिखी हैं। 50 को अपने ग्रंथ रूप में मैं लाया हूं। उसी प्रकार अपने संपादन सामग्रियों का भी ग्रंथ रूप में प्रकाशित किया। महाकाव्य पर साठ से अधिक मूर्धन्य साहित्यकार समीक्षाएं लिख चुके हैं। दस पी.एच.डी. ग्रंथ मेरे ऊपर आए हैं भारत के प्रसिद्ध विश्वविद्यालयों से। यू.जी.सी. ने मेरा शोध ग्रंथ प्रकाशित किया, पद्मभूषण पंत जी, पद्मभूषण महादेवी वर्माजी, पद्मभूषण रामकुमार वर्माजी, पद्मभूषण श्यामनंदन किशोरजी (नेशनल

प्रोफेसर) जैसे उच्चकोटि के साहित्य मनीषियों के मेरे ऊपर लिखे साहित्य और उनके द्वारा प्रदत्त 4 अभिनंदन ग्रंथ आदि यही सूचित करते हैं कि मैं बहुचर्चित एवं बहुप्रशंसित साहित्यकार माना जा सकता हूं। इनके साधुवाद स्वरूप अभिनंदन और कृपावचन मैं क्यों न मानूं, क्या मैं अपने सहभाव से उनका आभार न मानूं?

भारत के शासनाधिकारियों के सद्बचनों का स्मरण भी इस अवसर पर स्मरण किया जा सकता है। नई दिल्ली की गांधी शांति प्रतिष्ठान में मेरे सम्मानार्थ संपन्न एक विशाल सम्मेलन में उस समय के प्रसारण मंत्री लालकृष्ण अडवाणी ने कहा था—“हिंदी को पल्लवित करने का प्रयास किया था हिंदीतर प्रदेश के प्रतिष्ठित व्यक्तियों ने, जैसे, बालगंगाधर तिलक, महात्मा गांधी, केशवचंद्रसेन, आदि एन. चंद्रशेखरन नायर जी ने आज बड़ी नेतृत्व उठा लिया है। उनके हाथों हिंदी और उसका साहित्य पल्लवित-पुष्पिता होगा ही।” (12 अप्रैल 1979)

मेरी षष्टिपूर्ति के उपलक्ष्य में त्रिवेन्द्रम में आयोजित सम्मेलन में केंद्रीय मंत्री नरसिंहराव का भाषण “डा. नायर ने बहुत-सी किताबें लिखी हैं। कुछ मैंने पढ़ी है, और पढ़ना चाहता था, मेरे पास रखी हुई है, लेकिन मैं डा. नायरजी का इतना आदर करता हूं, उन्हें इतना मानता हूं कि मैं सारी पुस्तकें पढ़ूं, न पढ़ूं मेरे मन में उनका जो स्थान है वह बहुत ऊंचा है और आगे भी ऊंचा रहेगा। और ऐसे लोगों को पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिए जो एक भाषा के साहित्य को साहित्य के रूप में, साहित्य के नाते साहित्यिक ढंग से दूसरे साहित्य तक पहुंचा सकते हैं। This is a literary conveyance. यह linguistic conveyance नहीं है। किसी भी भाषा के क्षेत्र में ऐसे लोग इने-गिने ही आज मौजूद हैं। इनको पूरा प्रोत्साहन मिलना चाहिए। मैं और फिर एक बार उनको बधाई देता हूं (26.2.1987)

केंद्र ऊर्जामंत्री सुशील कुमार शिंदे का अभिमत निम्न प्रकार है : (मैं शिंदे साहब के मंत्रालय का हिंदी सलाहकार रह चुका था। किसी कार्यवश त्रिवेन्द्रम आए और मेरे द्वारा स्थापित केरल हिंदी साहित्य अकादमी में एक ऐतिहासिक घटना का चित्र अनावृत किया और भाषण दिया। सभा में अध्यक्ष रहे थे के.पी.सी.सी. अध्यक्ष रमेश चेन्नित्तलाजी ने। अपने संबंधित भाषण के सिलसिले में उन्होंने कहा वैसे तो डा. चन्द्रशेखरन नायर जी मेरी हिंदी सलाहकार समिति के सदस्य हैं। हम देखते हैं। राष्ट्र का पूरा निर्माण हो रहा है, इसलिए हमें इन हिंदी साहित्यकारों की पूजा अवश्य करनी चाहिए। ऐसे ही हम यहां हैं, हिंदी के वरिष्ठ सेवक डा. नायर जी यहां हैं, मैं महाराष्ट्र का हूं। फिर भी जहां भी मैं जाता हूं कहता हूं हिंदी को बढ़ावा देना है। मैं डॉ. चंद्रशेखरन नायरजी का बहुत आभारी हूं। चन्द्रशेखरन नायर जी का नाम सुनते ही मुझे शंकराचार्य का स्मरण आता है। ये सब हमारी संस्कृति के अंश हैं। लेकिन संस्कृति का प्रतिबिंब अगली पीढ़ी पर नहीं होता तो कैसे हमारी संस्कृति का पता लग पाएगा, तो कैसे हम समझ सकते हैं कि केरल की एक बुद्धिजीवी की दशा उस ज़माने में कैसी थी। आज यहां बैठे हुए विद्यार्थी जो बड़ी आशा से आ गए हैं कि इस सभा में कौन क्या बोल रहा है, लेकिन हमें विद्वानों के सामने झुकना चाहिए। यह श्रेष्ठता हमारे

पृष्ठ 31 पर जारी

हिंदी की पहली कला पत्रिका

कलकत्ता से जनवरी 1931 में प्रकाशित 'विशाल भारत' का कला-अंक चित्र, मूर्ति तथा स्थापत्य कला पर हिंदी की पहली पत्रिका थी। इस पत्रिका 'विशाल भारत' के संपादक थे बनारसी दास चतुर्वेदी, संचालक थे रामानंद चट्टोपाध्याय तथा इस विशेष कला-अंक के संपादक थे ब्रजमोहन वर्मा। इसमें मैथिलीशरण गुप्त की कविता और रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी भी शामिल थी। आज से लगभग उन्नासी वर्ष पूर्व प्रकाशित इस पत्रिका में 176 पृष्ठ थे और आर्ट पेपर पर श्याम-श्वेत तथा रंगीन चित्र थे, बता रहे हैं **शुकदेव श्रोत्रिय**

अभी तक के मेरे अध्ययन, अनुभव तथा जानकारीयों के आधार पर मैं यह मानता हूँ कि कलकत्ता से जनवरी 1931 में प्रकाशित 'विशाल



जीवन अंशु-अवनीन्द्रनाथ ठाकुर

भारत' का कला अंक चित्र, मूर्ति तथा स्थापत्य कला पर हिंदी की पहली पत्रिका थी। इस पत्रिका 'विशाल भारत' के संपादक थे बनारसी दास चतुर्वेदी, संचालक थे रामानंद चट्टोपाध्याय तथा इस विशेष कला-अंक के संपादक थे ब्रजमोहन वर्मा। आज से लगभग उन्नासी वर्ष पूर्व प्रकाशित इस पत्रिका में 176 पृष्ठ थे तथा यह प्रवासी प्रेस 120-2, अपर सर्कुलर रोड, कलकत्ता में छपी थी। इसकी छपाई उत्कृष्ट थी तथा इसमें आर्ट पेपर पर श्याम-श्वेत तथा रंगीन चित्र थे। इसके साथ अच्छे स्तर के कुछ रेखांकन भी थे। पत्रिका का मुखपृष्ठ सपाट रंगों में बना था जिस पर काली स्याही का रेखांकन है तथा इसकी रचना में दो चित्रकारों का योगदान था। नारी की आकृति यतीन्द्रनाथ सेन द्वारा की गई थी। पत्रिका श्री ग्रिफ़िट्स, रविशंकर रावल, नंद लाल बोस, अवनीन्द्र नाथ ठाकुर, प्रमोद कुमार चटर्जी, असित कुमार हालदार, कनु देसाई, वीरेश्वर सेन, रामकिंकर दास, सोमालाल शाह, एडवर्ड देसाई तथा जीन पेटि जैसे



पत्रिका का आवरण

शीर्षस्थ चित्रकारों की कलाकृतियों से सज्जित थी। प्रिंसिपल ग्रिफ़िट्स के चित्र 'अर्जता के कलामंडप' की रविशंकर रावल द्वारा की गई अनुकृति एक दुर्लभ चित्र है तथा रामकिंकर दास का चित्र 'हंस-दूत' तथा नंदलाल वसु का चित्र 'एकतारा' वाश पेंटिंग का उत्कृष्ट उदाहरण है। इस पत्रिका के लेख भी अपनी सामग्री में, सूचनाओं में तथा तकनीकी जानकारी में महत्वपूर्ण हैं।

रविशंकर रावल के लेख 'अर्जता के कलामंडप' में कुछ ऐसी जानकारीयाँ हैं जो शोध जैसी लगती हैं। आज प्रायः यह पढ़ने को नहीं मिलता कि गुफा संख्या 17 के पास जो सीढ़ियों के अवशेष हैं वह अर्जता का प्राचीन प्रवेश मार्ग था। पंद्रह मुद्रित पृष्ठ के लंबे इस लेख में श्वेत-श्याम फोटोग्राफ, रेखांकनों जैसी सामग्री के साथ पोशाक, अलंकरण (आभूषण), अस्त्र-शस्त्र तथा चित्रित बर्तनों जैसे शोध-उपयोगी चित्र भी दिए गए हैं। केदारनाथ चटर्जी के लेख 'गहना' में भारतीय आभूषणों के

नाजिम हिकमत की कविताएं

अंग्रेजी से अनुवाद : चन्द्रबली सिंह

हाथ

पत्थरों की तरह गंभीर हैं तुम्हारे हाथ
कारा में गाए हुए गीतों की तरह उदास
भारवाही पशुओं से विशाल
भूख से मरते हुए बच्चों की क्रुद्ध आकृतियों से

तुम्हारे हाथ मधु-मक्खियों से परिश्रमी और दक्ष
दूध भरे स्तनों-से गदराए
प्रकृति से पराक्रमी
रुक्ष-चर्म के नीचे सुहृद-सा कोमल स्पर्श छिपाए

यह पृथ्वी वृषभ-शृंगों पर नहीं टिकी है
यह तुम्हारे हाथों पर टिकी है

आह, साथियो, हमारे साथियो
तुम्हें वह खाने को झूठ देते हैं
भूख में तड़पते हुए जब तुम्हें रोटी और मांस की ज़रूरत है
मेज़ पर साफ़ कपड़ा बिछाकर
एक बार भी जी-भर छाए बिना
तुम ऐसी दुनिया से कूच कर जाते हो
फलों से जिसकी शाखाएं झुकी हैं।

आह, साथियो, हमारे साथियो
सर्वोपरि एशियाई, अफ्रीकी
भव्यपूर्व, निकट-पूर्व
प्रशांत द्वीप-माला के
और मेरे देश के
यानी मानवता के सत्तर फीसदी से भी अधिक

पुरातन हो, ध्यान में खोए, अपने हाथों के सदृश
किंतु उनके ही सदृश जिज्ञासु, उत्साही, युवा हो

साथियो, आह, हमारे साथियो
यूरोप या अमरीका के मेरे बंधु
तुम जागे हुए हो और तुममें साहस है
और तुम सरलता से अपने हाथों के सदृश्य मूर्ख बन जाते हो
सरल है तुम्हारा धोखा खा जाना

साथियो, आह, हमारे साथियो
अगर एरियल बोलते हैं झूठ
अगर छापे की मशीनें बोलती हैं झूठ
अगर किताबें बोलती हैं झूठ
अगर दीवारों के इश्तहार और अखबारों के विज्ञापन बोलते हैं झूठ

अगर लड़कियों की नंगी टांगें रजत-पट पर बोलती हैं झूठ
अगर प्रार्थनाएं बोलती हैं झूठ
अगर स्वप्न बोलते हैं झूठ
अगर लोरियां बोलती हैं झूठ
अगर हौलियों के वायलिन की आवाज़ बोलती है झूठ
अगर निराशा के दिन के बाद चांदनी बोलती है झूठ
अगर शब्द बोलते हैं झूठ
अगर रंग बोलते हैं झूठ
अगर वाणियां बोलती हैं झूठ
अगर तुम्हारे हाथों के श्रम को नूटने वाला बोलता है झूठ

अगर हर चीज़ और हर आदमी बोलता है झूठ
और झूठ नहीं बोलते हैं केवल तुम्हारे हाथ
तो यह सब इसलिए कि वे लचीले हों गीली मिट्टी की तरह
अंधे हों अंधेरे की तरह
मूर्ख हों गडरिये के कुत्तों से

और इसलिए कि बगावत से दूर रहें तुम्हारे हाथ
और इसलिए कि ख़त्म न हो
पैसे के लोभी का राज्य
उसका अत्याचार
क्षणभंगुर
किंतु ऐसी अद्भुत दुनिया से
जहां हम थोड़े ही दिनों का डेरा डालते हैं (1949)

वसंत का एक दृश्य

कोहनियों और घुटनों के बल
खेत में वह चौपाए अपंग जानवर की तरह रेंगता जाता था
उसकी बंदूक की पेटी सरक कर उसकी गर्दन तक जा पहुंची थी
उसका चेहरा और उसके हाथ गंदे थे
उसकी पीठ निराशा के साथ खींची थी

एक माह पहले बर्फ दरक चुकी थी
भयानक ढहने के धमाके के साथ उसके चमकते हुए खंड
नदियों में प्रवाहित होते हुए गुनगुने समुद्रों तक
जा पहुंचे थे
पहले, पंद्रह दिनों तक वर्षा होती रही
और तब अचानक पिछली रात
बादल फटकर गायब हुए
सितारे अचानक गरम हो चुके थे
और आदमियों के इतने पास आ पहुंचे थे
कि अगर कोई अपना हाथ ऊपर उठाता
तो वह उनकी आग से अपनी सिगरेट जला सकता था

वह नम भूमि पर रेंगता जाता था
उसकी नाक से खून बहता था

भोर होने में अभी एक घंटा बाकी था
लेकिन हवा में ऐसी रोशनी थी जैसे रात फिर नहीं आएगी
जल और भूमि में बीजों
तुम्हारी लंबी नींद विदा!
कीड़े-मकोड़ों की बाढ़ आ गई थी
जल्द ही जंगली हंस दक्षिण से उत्तर की ओर उड़ते चले जाएंगे

उसने अपनी दाढ़ी को बढ़ते जाने दिया था
वह एक पौधे जितना बड़ा था और उसके लोहे के टोप
के नीचे उसके सिर की उम्र का पता नहीं चलता था
सिर्फ उसके दांत ही एक नौजवान भेड़िए की तरह थे, श्वेत और साफ
हवा में उम्मीदें थीं
भूमि मिलने वाली उम्मीदों से लदी थी
जीना मेंढकों के लिए भी सुखमय था
मेंढक नरम और फुर्तीले थे
अपने पूरे खुले मुँहों और पतली टांगों के साथ उमंग में थे,
मेंढक नम खेत में उछलते थे



नाज़िम हिकमत

अचानक अपनी चार टांगों पर वह रुका
और उसने उछलते मेंढकों को देखा
उसकी नाक से खून की बूंदें बंदूक पर टपकती थीं

यह वसंत ऋतु थी, प्रिये, वसंत ऋतु
और हर वस्तु प्रस्तुत थी, खुश होने के लिए प्रस्तुत थी
भूमि, हवा और पानी में
हर वस्तु।

(1995)

अपनी कविता के बारे में

मेरे पास सवारी के लिए चांदी की काठी का कोई घोड़ा नहीं,
जीवन बिताने के लिए कोई वसीयत नहीं
न तो धन-धान्य या भू-संपत्ति या भवन—
शहद का एक पात्र, आग की तरह सुख,
मेरा सारा धन!

मेरा शहद मेरा सब कुछ है
धन-धान्य और मेरी भू-संपत्ति और भवन
—मतलब, शहद का मेरा पात्र—
हरेक जाति के नाशक जीवों से
सुरक्षित रखता हूँ
बंधु, ज़रा प्रतीक्षा करो ...
जब तक मेरे पात्र में
शहद शेष रह जाएगा
उसके पास टिम्बकटू से
मधुमक्खियाँ आएंगी

(1935)

हिंदी की पहली कला पत्रिका

पृष्ठ 25 से आगे

लंबे इतिहास की प्रस्तुति है।

पूर्व ऐतिहासिक काल, मोहनजोदड़ो, उत्तर भारत, उड़ीसा, सारनाथ, तक्षशिला, अजंता, अमरावती, सिंहल, दिल्ली, बंबई के आभूषणों के चित्रों के साथ इटली, जर्मनी, बर्मा, पेरिस के कुछ आभूषणों के चित्र भी लेख में दिए गए हैं। राय कृष्णदास के लेख 'वर्तमान हिंदी-पत्रों में चित्र' में तत्कालीन पत्र-पत्रिकाओं के संपादकों के लिए मार्गदर्शन है कि वे पत्र-पत्रिकाओं में कैसे चित्र छापें? ब्रजमोहन वर्मा के लेख 'काष्ठ-खुदाई के चित्र' में यूरोप की वुड-प्रिंट शैली का विस्तृत विवेचन है। इस लेख में इस शैली के इतिहास, तकनीक, चित्रकारों की नामावली तथा उनकी अनुकृतियों का भंडार है।



अजंता के कलामंडप में
पूजा-ग्रिफित्स

फ्रेंच लेखक अनातोले फ्रांस की एक पुस्तक के लिए यूरोपीय चित्रकार मारासिया लेन फास्टर से लेकर श्लेगेनहाउन, ब्रूनो गोल्डस्मिथ, लाडिसला स्कोजिलस, जीन केफालिनस के साथ भारतीय चित्रकारों में रामेंद्र चक्रवर्ती के छह काष्ठ छाया-चित्र दिए गए हैं। लेख 'हाथी-दांत पर शिल्प का काम' में लेखक का नाम नहीं दिया गया है।

इसी प्रकार 'लुक का काम' शीर्षक लेख के लेखक के नाम के स्थान पर 'एक कला-प्रेमी' लिखा हुआ है। इसमें भारतीय, यूरोपीय तथा जापानी लुक के काम के चित्रित उदाहरण दिए गए हैं। 'लकड़ी पर शिल्प का काम' लेख में श्वेत-श्याम फोटो के साथ जो रेखांकन दिए हैं वे स्वयं अपने में उत्कृष्ट कलाकृति मानी जा सकती है। उनकी सूक्ष्मता, छाया प्रकाश तथा परिप्रेक्ष्य का प्रभाव असाधारण है। 'इटैलियन चित्रकला की रूपरेखा' लेख पुनः ब्रजमोहन वर्मा का है।

डॉ. ए. के. कुमारस्वामी के लेख 'राजपूत चित्रकला की रूपरेखा' लेख पुनः ब्रजमोहन वर्मा का है। डा. ए. के. कुमारस्वामी के लेख 'राजपूत चित्रकला' में जो सामग्री है वह निश्चित ही शोधार्थियों के उपयोग की है। शांतिप्रिय द्विवेदी के लेख 'भारतीय कला का संरक्षण' में कला की व्याख्या से प्रारंभ होकर भारत कला भवन की स्थापना तक का विस्तृत फलक दिया गया है। 'भारतीय शिल्प-विद्या' लेखक फणीन्द्रनाथ बसु तथा 'संस्कृत साहित्य में चित्रकला' लेखक 'चंद्र' दोनों संस्कृत साहित्य के कला विषयक, ऐतिहासिक, दार्शनिक तथा सौंदर्यशास्त्रीय उद्धरणों से परिपूर्ण हैं। बचुभाई रावल का लेख 'गुजरात में कला-संबंधी नवीन जागृति' महत्त्वपूर्ण लेख है।



अहिल्या-सोमालाल शाह

गुजरात प्रांत के कला के इतिहास को लिखने के लिए इस लेख से महत्त्वपूर्ण सामग्री मिल सकेगी। इस लेख की विशेषता यह भी है कि इसमें रविशंकर रावल, कनु देसाई, रविशंकर पंडित, रसिकलाल परीख, कृष्ण लाल भट्ट और सोमालाल शाह के बहुत अच्छे फोटोग्राफ दिए गए हैं जो आज दुर्लभ हो गए होंगे। अर्धेन्द्र कुमार गांगुली के लेख 'इंडियन सोसाइटी ऑफ ओरिएण्टल आर्ट' में इस सोसाइटी का विस्तृत परिचय दिया गया है।



हंस-दूत-रामकिंकर दास

ऐसे ही परिचयात्मक लेख 'चित्रकार श्री सोमालाल शाह' लेखक शंकरदेव विद्यालंकार, चित्र शिल्पी हकीम मुहम्मद खां, लेखक सुधीन्द्र वर्मा, 'शिल्पी' श्री प्रमोद कुमार चटर्जी, 'कार्टून या व्यक्तिचित्र', लेखक हरिपद राय, 'कला विधा' रवीन्द्रनाथ ठाकुर, 'श्री नंदलाल बोस और शांतिनिकेतन का कला-मंदिर' के लेखक शंकर देव विद्यालंकार हैं। प्रमोद कुमार चटर्जी के लेख में उनके जो रेखांकन दिए हैं वे कलागत और शिल्पगत उत्कृष्टता के दिखाई देते हैं।

इस पत्रिका में मैथिलीशरण गुप्त की कविता 'मंगल-घट', श्याम सुंदर खत्री की 'कला', जगन्नाथ प्रसाद मिलिन्द की 'प्रार्थना' कहानी संगमरमर की मूर्ति रवीन्द्रनाथ ठाकुर की कहानी 'दुराशा' (अनुवादक : धन्य कुमार जैन), परशुराम रचित 'हनुमान जी का सपना' (रेखांकन : यतीन्द्र कुमार सेन) एक फन्तासी है।

इसी प्रकार कुछ छोटी कविताएं यथा-'फुलझड़ियां'-सोहनलाल द्विवेदी, 'दिले-दर्द-आशना' लेखक महाराज बहादुर बर्क, 'आह्वान' मधुसूदन प्रसाद मिश्र भी प्रकाशित की गई हैं। एक महत्त्वपूर्ण लेख 'भारतीय स्थापत्य कला' भी विशेष उल्लेखनीय है।

'चित्र-संग्रह' शीर्षक लेख के अंतर्गत कलकत्ते का एक कला संग्रहालय कुमार सिंह भवन, भारतीय कला का पुनरुत्थान, भारतीय ग्राम में ईसा मसीह, चित्रशिल्पी रामेश्वर प्रसाद वर्मा जैसे कुछ शीर्षकों पर संक्षिप्त टिप्पणियां दी गई हैं। संपादकीय विचारों के साथ समापित होने वाले इस कला अंक से हिंदी में कला पत्रिकाओं का शुभारंभ हुआ जिसकी अगली कड़ी 1948 में भारत कला भवन, वाराणसी में प्रकाशित 'कला निधि' (त्रैमासिक) रही जिसके केवल पांच अंक प्रकाशित हो सके। इसके संपादक प्रसिद्ध कलाविद् राय कृष्णदास थे। □

(सभी चित्र 'विशाल-भारत', कला-अंक से साभार)

संपर्क : 8-सी, डी.डी.ए. फ्लैट्स, निर्माण विहार, दिल्ली-110092

मधुबनी चित्रकला की प्रकाशपुंज

महासुंदरी देवी महिलाओं के अधिकार के प्रति सजग थीं। वे महिलाओं को आत्मनिर्भर देखना चाहती थीं। इसलिए, अपने घर के इर्दगिर्द की महिलाओं को हाथ पकड़ कर पेंटिंग करना सिखाया, बता रहे हैं चंद्र मोहन मिश्र

मिथिला पेंटिंग को खूबसूरत स्वरूप प्रदान करने के लिए सुप्रसिद्ध रही पद्मश्री महासुंदरी देवी का अवसान मधुबनी चित्रकला के आधारस्तंभ का इतिहास में समा जाना जैसा है। उन्होंने अपने अथक परिश्रम से मधुबनी चित्रकला की विभिन्न विधाओं को केवल जीवंतता ही नहीं प्रदान की बल्कि उसे आगे भी बढ़ाया। उनके प्रयास के परिणामस्वरूप ही मधुबनी चित्रकला लोगों के रोज़गार का माध्यम बना। प्रारंभिक काल में उन्होंने अपने परिजनों व नज़दीकी लोगों को मधुबनी की इस प्राचीन कलाशैली का प्रशिक्षण दिया। धीरे-धीरे वह स्वयं में एक संस्था बन गई थीं। ऐसा कहा जाता है कि इच्छा-शक्ति यदि दृढ़ हो तो सफलता अवश्यंभावी होती है। महासुंदरी देवी की मेहनत रंग लाई और सत्तर के दशक में मधुबनी चित्रकला ने राष्ट्रीय स्तर पर मुकाम हासिल करना प्रारंभ कर दिया था। कालांतर में यह मिथिला पेंटिंग के नाम से ख्यात हुआ। मधुबनी और उसके इर्दगिर्द ही नहीं बल्कि उसके बाहर भी इस कला के प्रति लोगों का रुझान दिनानुदिन बढ़ता गया। मिथिला चित्रकला के विकास के लिए, कला के प्रति समर्पित कुछ स्वयंसेवी संगठन आगे बढ़े और सरकार का ध्यान भी इस ओर गया। इन सब प्रयासों के कारण ही आज भारत की विभिन्न कला शैलियों में मधुबनी चित्रकला ने अपनी विशिष्ट पहचान बनाई है।

एक समय था जब यहाँ के गांवों की इस कला का स्वरूप बहुत ही साधारण रूप में ग्रामीण जीवन का अंग था। लकड़ी की कूची बनाकर महिलाएं विभिन्न पर्व-त्योहारों, उपनयन एवं शादी-विवाह के अवसरों पर



मधुबनी चित्रकला का नायाब नमूना

दीवारों, बर्तनों सहित अन्य चीजों पर अपने से बनाए रंगों से चित्र उकेरती थीं। सीक से बनाई गई और लाह, लकड़ी सहित अन्य चीजों से निर्मित कलात्मक वस्तुएं अत्यंत मनमोहक और आकर्षक रूप में प्रस्तुत की जाती थीं। यह मिथिलांचल की लड़कियों को पारिवारिक विरासत के रूप में अपने ग्रामीण जीवन में मिलती थी, पर विरासत को जीवन का आधार बनाकर भौतिकवादी युग में महासुंदरी देवी ने जिस



पद्मश्री महासुंदरी देवी

प्रकार मधुबनी चित्रकला को नवीन आयाम दिया वह न सिर्फ अब ग्रामीण शैली है, बल्कि अंतर्राष्ट्रीय फलक पर सम्मान पाने में भी सफल रहा है।

महासुंदरी देवी के जाने से निश्चय ही पारंपरिक कला को गहरा झटका लगा है। मधुबनी जिलांतर्गत बेनीपट्टी के चतरा गांव में 1922 में जन्मी महासुंदरी देवी वचपन से ही कला में निपुण थीं। 17 फरवरी, 1939 को मात्र सत्रह वर्ष की अवस्था में इनका विवाह रांटी गांव में हुआ था। ससुराल आने के कुछ ही दिनों के पश्चात् इनकी कला की प्रसिद्धि का परचम फहराने लगा। इनकी कला की खूबसूरती, संजीदगी एवं जीवंतता ने इन्हें जिला के इर्दगिर्द के गांवों में चर्चा का विषय बना दिया। निरंतर बढ़ रही प्रसिद्धि ने इनकी झोली को सम्मान से भर दिया। केवल सातवीं कक्षा उत्तीर्ण महासुंदरी देवी को वर्ष 1967 में उनकी बेहतर कला के लिए भारतीय नृत्य कला मंदिर द्वारा ताम्रपत्र एवं अंगवस्त्र देकर सम्मानित किया गया। यह उनके लिए बड़ा ऐतिहासिक और आनंद विभोर कर देने वाला दिन था। उस समय गांव उतना विकसित भी नहीं था तथा प्रिंट मीडिया और इलेक्ट्रॉनिक मीडिया भी आज की तरह जागरूक नहीं थे। ऐसे में पिछड़े और ग्रामीण क्षेत्र के किसी व्यक्ति को सम्मान मिलना वहाँ के सर्वसाधारण के लिए निश्चय ही एक सुखद अहसास की अनुभूति करा जाता था।

वर्ष 2011 में उन्हें भारत की पूर्व राष्ट्रपति प्रतिभा देवी सिंह पाटिल द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया गया। महासुंदरी देवी को राज्य एवं राष्ट्रीय स्तर पर 22 अन्य सम्मान भी प्रदान किए गए थे। बाल्यकाल से इनका जीवन दूसरों के लिए प्रेरक रहा है। मधुबनी



मधुबनी चित्रकला के साथ महासुंदरी देवी

चित्रकला को जिस जीवंतता के साथ उन्होंने कागज़ों पर उकेरा और फिर नवीन आयाम दिए, यह उनके जीवन की महत्वपूर्ण संघर्ष गाथा है।

महासुंदरी देवी ने 8/66 के पैनल पर मिथिला की एक लड़की के जन्म से विवाह तक के जीवन पर आधारित चित्रांकन कर एक मिसाल कायम की थी। इस पेंटिंग को बिहार सरकार द्वारा उपहारस्वरूप राज्यसभा भवन, नई दिल्ली को भेंट किया गया था।

मधुबनी चित्रकला को अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर पहुंचाने में इस क्षेत्र में पद्मश्री सम्मान से सम्मानित जगदम्बा देवी, सीता देवी के बाद अंतिम कड़ी के रूप में पद्मश्री महासुंदरी देवी ही रही हैं। 1970 में साड़ी पर, 1973 में लकड़ी पर और 1980 में सनमाईका पर चित्रकारी कर उन्होंने मधुबनी चित्रकला को नवीन आयाम दिया।

वर्ष 2011 में भारत के राष्ट्रपति द्वारा महासुंदरी देवी को पद्मश्री सम्मान से सम्मानित किया जाना मधुबनी चित्रकला का ही सम्मान नहीं, अपितु संपूर्ण मिथिला की सभ्यता-संस्कृति का सम्मान है। उनका अवसान भले ही हो गया हो, परंतु उनकी कीर्ति हमेशा मिथिलांचल के लोगों के लिए प्रकाश-पुंज का काम करेगी।

इधर जीवन के आखिरी दिनों में अपनी अस्वस्थता के कारण घर से बाहर उनका आना-जाना नहीं होता था। पर, बाहर से आने-जाने और मिलने-जुलने वालों का सिलसिला लगभग जारी ही रहता था। दूर से आए अतिथि उनसे मिलकर कला के प्रति उनके समर्पण से अत्यंत प्रभावित हुए वगैर नहीं रहते।

महासुंदरी देवी महिलाओं के अधिकार के प्रति सजग थीं। वे महिलाओं को आत्मनिर्भर देखना चाहती थीं। इसलिए, अपने घर के इर्दगिर्द की महिलाओं को हाथ पकड़कर पेंटिंग करना सिखाया। उन्होंने उपेंद्र महारथी शिल्प अनुसंधान, पटना में कलाकारों को प्रशिक्षण दिया। कई सरकारी व गैर सरकारी संस्थानों के माध्यम से हजारों लोगों को पेंटिंग का प्रशिक्षण दिया।

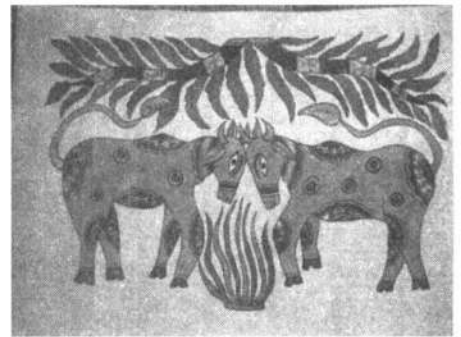
महासुंदरी जी ने विदेशों में भी अपनी पेंटिंग का लोहा मनवाया। उन्होंने मिथिला म्यूजियम, जापान में जाकर चित्र बनाकर प्रदान किया। 1992 में मॉरीशस और फ्रांस जाकर मिथिला पेंटिंग बनाई। इसी क्रम में वहां की लड़कियों को मिथिला पेंटिंग से रू-ब-रू कराया। नई दिल्ली में आयोजित अंतर्राष्ट्रीय मेले में इंग्लैंड की पूर्व प्रधानमंत्री मार्गरेट थैचर इनके स्टॉल पर आई और इनकी पेंटिंग की भूरि-भूरि प्रशंसा की।

उन्होंने अनेक प्रदर्शनियों में भाग लेकर मिथिला पेंटिंग को नई ऊंचाई और पहचान दिलाई। गोस्वामी तुलसीदास की 500वीं जयंती पर 26 फरवरी, 1997 को मध्यप्रदेश की राजधानी भोपाल में इनकी रामायण पर बनाई गई पेंटिंग शृंखला प्रदर्शनी का उद्घाटन भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति डा. शंकर दयाल शर्मा के हाथों हुआ था जिसे स्टार टी.वी. द्वारा विश्व के 85 देशों में प्रसारित किया गया था।

महासुंदरी देवी का पूरा घर कला दीर्घा है। उनके घर में प्रवेश करने पर उनको भिले सम्मान से संबद्ध वस्तुएं व तस्वीरें नज़र आती हैं। आंगन में प्रवेश करने पर बरामदे पर बड़े-बड़े चित्र दिखते हैं। आंगन के बीच एक पक्का मड़वा है, जिस पर मिथिला पेंटिंग सुशोभित है। वे अन्य मिथिला लोककला में भी निपुण थीं। वह पेंटिंग के साथ सिक्कीकला, गुड़िया कला, पेपर मेसी, सुजनी कला का भी काम करती थीं पर उन्हें ख्याति मिथिला पेंटिंग से ही मिली।

महासुंदरी देवी स्नेहिल व्यक्तित्व वाली महिला थीं। अपरिचित व्यक्ति भी मिलकर उनसे स्नेहासिक्त हो जाता था और उनका ही होकर रह जाता था। समाज में महिलाएं कमज़ोर न रहें, बेरोज़गार न रहें, यह सोचकर ही उन्होंने उन्हें आत्मनिर्भर बनाने के टिप्स दिए। आगे बढ़ उनके हाथ थामे, उन्हें नई दशा और दिशा देकर आत्मनिर्भर बनाया। इनकी प्रेरणा के परिणामस्वरूप ही आज सैकड़ों महिलाएं मिथिला पेंटिंग बना रही हैं। देश की कौन कहे, विदेशों में भी इन्हें जानने वालों की कमी नहीं है। इन्होंने यह साबित कर दिया कि आदमी अपने काम से महान बनता है।

11 जुलाई, 2013 को बिहार के मुख्यमंत्री ने उनके निवास-स्थान रांटी (मधुबनी) जाकर उनके चित्र पर श्रद्धा-सुमन अर्पित किए और शोक-संतप्त परिवार को सांत्वना दी। इस अवसर पर माननीय मुख्यमंत्री ने कहा कि महासुंदरी देवी जैसे सिद्ध इस्त कलाकार विरले ही होते हैं। उनके सपने को सरकार पूरा करेगी। माननीय मुख्यमंत्री ने अनेक शोकाकुल परिवार को आश्वस्त किया कि मिथिला पेंटिंग के लिए बनने वाले इंस्टीट्यूट में उनको उचित स्थान दिया जाएगा। उन्होंने खुलने वाले इस संस्थान में मधुबनी पेंटिंग का प्रशिक्षण, विपयान एवं संग्रहालय सहित समस्त सुविधाएं उपलब्ध कराने का भी भरोसा दिलाया।



मधुबनी चित्रकला का एक नमूना

नब्बे वर्ष की अवस्था में 4 जुलाई, 2013 को आठ बजे प्रातः मंगरौनी (मधुबनी) स्थित हार्ट हॉस्पिटल में उन्होंने आखिरी सांस ली। उनका जाना मिथिला चित्रकला के देदीप्यमान नक्षत्र का तिरोहित हो जाना है। मिथिला पेंटिंग का दुनिया भर में उन्होंने अलख जगाया। आने वाली पीढ़ियों के लिए वह प्रेरणास्रोत का कार्य करेगी। □

संपर्क : द्वारा श्री चंद्रकांत झा, 'मीरा निवास' (कनाडा भवन के पीछे), डा. सी.पी. ठाकुर पथ, शिवपुरी, पो. शास्त्रीनगर, पटना-800023 (बिहार)

सृजनशीलता ईश्वरीय वरदान है

पृष्ठ 24 से आगे

साहित्य जीवन में उच्चस्तर की है। आज वह प्रणाली देखने को मुझे सौभाग्य मिला। इसके लिए मैं डा. साहब को बहुत धन्यवाद देना चाहूंगा। (16.10.2006)

सम्प्रति आप क्या लिख रहे हैं और आगे लिखने की क्या योजना है?

अभी पिछले महीने में केंद्र सरकार के शिक्षा मंत्रालय से निदेशित मेरा एक ग्रंथ जो सन् 1987 में प्रकाशित था, केरल के हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास, जो हमारे देश में इस विषय पर अकेला है, प्रकाशित हुआ (यह ग्रंथ केरल के विश्वविद्यालय के पाठ्यक्रम में है। और देशीय ग्रंथ में गणनीय है। वैसे मेरे ग्रंथों में यह पचासवां है।)

अभी नवती की दशा में सोद्देश्य ग्रंथ रचना करना समाप्त कर दिया। लेकिन, अब तक ग्रंथ का काम चल रहा है। उसका प्रकाशन

देश-भर से कुछ-न-कुछ लिख भेजने का आग्रह बराबर हो रहा है और ग्रंथों की अवतारिकाएं तैयार करनी पड़ती है।

अपने अनुभवों के आधार पर नई पीढ़ी के रचनाकारों के लिए आप क्या संदेश देना चाहेंगे?

नई पीढ़ी के रचनाकारों से हमें अवश्य आशा रखनी चाहिए। वे ही देश की संस्कृति के संरक्षक हैं। जीवन मधुर एवं उत्साहवर्द्धक बनाना उनका दायित्व है। उनकी अकलंक भाव-दीप्ति में भविष्य सुरक्षित रहेगा लेकिन उसके लिए तपस्यारत प्रयत्न की जरूरत होगी है। अपने आस-पास का संपूर्ण समाज देखें और उसे आत्मसात करें। उस जीवन में अपनी मिट्टी यानी देश को जोड़ दें। जो भी दिखाई देता है, उसे भावोज्वल एवं समरस बनाने की ब्रती उन्मेष भर दें। इस वृत्ति में अपना दायित्व अनुभव कर लें क्योंकि, निजता भाव आने से समर्पण का त्याग सुरक्षित एवं सार्थक रहेगा। □

संपर्क : भारतीय पब्लिक अकादमी, चांदन रोड, फरीदी नगर, लखनऊ-226015

हमारे गौरव-ग्रंथ

भारतीय सिनेमा के शिखर-पुरुष सत्यजित राय बहुमुखी प्रतिभा के धनी थे। वह महान फिल्म-निर्देशक तो थे ही, साथ ही कथाकार, चित्रकार, फोटोग्राफर, संगीतकार और संपादक भी थे। कलम, कैमरा और तूलिका पर उनका समान अधिकार था। वह अपनी फिल्मों के दृश्यों को पटकथा के साथ ही रेखांकित कर लेते थे। उनकी विश्व-प्रसिद्ध बंगला फिल्में हैं— पथेर पांचाली, अपराजिता, अपूर संसार, चारुलता, गूपी गाइन बाधा बाइन, आर्गतुक इत्यादि। उन्होंने हिंदी में भी दो फिल्में शतरंज के खिलाड़ी और सद्गति बनाई।

किशोर कथा-साहित्य में भी सत्यजित राय का योगदान कोई कम नहीं है। सत्यजित राय के दादा उपेन्द्रकिशोर रायचौधुरी उत्कृष्ट बाल-साहित्यकार थे और पिता सुकुमार राय बाल-मासिक पत्रिका 'संदेश' के संपादक थे। कम उम्र में सुकुमार राय के निधन के बाद 'संदेश' का प्रकाशन रुक गया। 1961 में सत्यजित राय ने कवि सुभाष मुखोपाध्याय (संयुक्त संपादक) के साथ मिलकर 'संदेश' बाल-पत्रिका का फिर प्रकाशन शुरू किया। इसके बाद ही सत्यजित राय ने बाल तथा किशोर साहित्य का लेखन शुरू किया।



इसी कड़ी का एक अंश यह किताब है जिसमें सत्यजित राय की 13 कहानियां और उन्हीं के द्वारा बनाए रेखाचित्र हैं। आपकी कहानियों में विज्ञान, मनोविज्ञान, कल्पना शक्ति, संयोग और सुपर नैचुरल शक्तियों का अद्भुत समन्वय है। कहानियों में मानवीय शक्तियों, आदर्शों के साथ ही, इंसानियत की मशीनों, दुष्ट शक्तियों और बुरे इरादों पर विजय होती है? स्थान और प्रकृति प्रेम की भी बहुतायत है। कथानक के अप्रत्याशित मोड़ से रोचकता भी बनी रहती है। प्रत्येक कहानी उच्च दर्जे के किस्सागो और कुशल चितरे द्वारा चित्रण का नमूना है।

सत्यजित राय के द्वारा निर्मित वैज्ञानिक प्रोफेसर शंकु और जासूस फेलुदा जैसे हरफनमौला, साहसी और बुद्धिमान चरित्र बाल तथा किशोर पाठकों के चहेते बन गए। कलम, कैमरे, कूची पर एक जैसी महारत रखने वाले सत्यजित राय की कलम की जादूगरी किशोर पाठकों को लुभाएगी, चमत्कृत करेगी और मानवीय मूल्यों के प्रति प्रेरित भी करेगी। कहानियों के साथ आवरण पृष्ठों पर लेखक के ही बनाए गए चित्रों की प्रतिकृतियां लगाई गई हैं।

हंसने वाला कुत्ता : लेखक : सत्यजित राय, प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, चतुर्थ संस्करण (2013), पृष्ठ संख्या : 215, मूल्य : 155 रुपये (पेपरबैक)

“क्यों भई, चलने का इरादा है?” ...
 “अभी थोड़ा रुक जाइए! बेटे का नियुक्ति पत्र आने ही वाला है, फिर चला चलूंगा।”
 “इतना काफ़ ज़ेल रहे हो पर मुक्ति नहीं चाहते, मोह माया में जकड़े हुए हो।”... “ऐसी बात नहीं है गुरुदेव! मैं बस इतना चाहता हूँ कि आपके महिष पर आरूढ़ होते समय मैं सुकरात की तरह निश्चिंत, शांत और आनंदित रहूँ।” ..
 ..“क्यों नहीं!”

रामनारायण को अपने कंधे पर दबाव महसूस हुआ। उन्होंने आंखें खोलीं। सामने उनकी दस वर्षीय पोती खड़ी थी, गोल, मटोल, प्रगल्भ। उनके कंधे हिलाकर कह रही थी, “बाबा, उठिए। क्या हरदम सोते रहते हैं?”

“सो नहीं रहा था पगली।”

“तो क्या कर रहे थे?”

“मर रहा था।”

गुड़िया खिलखिला कर हंस पड़ी। रामनारायण ने उसकी ज्ञान वृद्धि के लिए श्वासन के गुरु समझाना प्रारंभ किया—जैसे शीतकाल में न्यूनतम मेटाबोलिज़्म के लिए मेंढक धरती के नीचे गहन सुप्तावस्था में चला जाता है। तुमने पढ़ा ही होगा। “अस्पताल नहीं जाना है क्या?” गुड़िया ने बीच में ही बात काटकर ढिठाई से पूछा, “वारिश रुक गई है?”

रामनारायण ने उसे नाराज़गी से देखा, फिर कुर्सी से उठ खड़े हुए।

“मोटी गुड़िया, ज़हर की पुड़िया,” वे मुंह बिगाड़कर बोले।

“बाबा की चांद, भैंसे की नाद” कहते हुए गुड़िया हंसती हुई बाहर भाग गई।

रामनारायण ने पुर्जा संभाला, छाता लिया और आहिस्ता-आहिस्ता सीढ़ियां उतरकर बाहर निकल आए। गली पार करते-करते उनकी सांस फूलने लगी और एन्जाइना का दर्द भी उभरने लगा। वे स्थिर होने के लिए किनारे चबूतरे पर बैठ गए। आक्सीजन! आक्सीजन! क्या ही अच्छा होता अगर इनहेलर की तरह कोई ‘डिवाइस’ होती जिसमें आक्सीजन भरा होता और आदमी जब चाहता दो-चार फूंक लेकर

वैतरणी

विनोद कुमार



अपने फेफड़े तरोताज़ा कर लेता। सिप्ला, रैनबैक्सी, ... ध्यान दो। ऊपर बादल घुमड़ रहे थे, ठंडी हवाएं बह रही थीं। वे सारा मनोबल जुटाकर उठ खड़े हुए।

मुख्य सड़क गंदे बरसाती पानी से पटी थी। बगल की उफनती नालियों और कूड़े के ढेर से निकले काले प्रलेह ने इसे काली दह का रूप दे दिया था। दूरदर्शी महापालिका ने जल संरक्षण के लिए जो विभिन्न प्रकार के गड्ढे जगह-जगह रख छोड़े थे, वे बारूदी माइनों की तरह पानी में मुंह छुपाए निरीह पदयात्रियों की आस में प्रतीक्षारत थे। सबसे बचते-बचाते लोग किनारे की ऊंची ज़मीन से फिसलते, लड़खड़ाते रास्ता तय कर रहे थे। चूंकि रामनारायण के लिए यह सरकसी करतब संभव नहीं था इसलिए उन्होंने अपनी गाड़ी कमाई के पंद्रह रुपये ढीले कर एक रिक्शेवाले को इस वैतरणी को पार करा देने के लिए पटाया।

रिक्शावाला पैदल ही उन्हें लेकर आगे बढ़ा। थोड़ी दूर जाने के बाद ही पीछे से आती एक बोलरो, माइक से प्रचार करती, छिंटे उड़ाती,

हरहराती आगे निकल गई। रामनारायण का कुर्ता गंदे छोटों से भर उड़ा। रिक्शेवाले ने दनादन कई मोटी गालियां भागती गाड़ी पर दाग दी।

सरकारी अस्पताल का फाटक पार करते ही रामनारायण को बैनर लगी बोलरो अंदर एक किनारे खड़ी मिली। ‘स्वच्छ देवरिया, सुंदर देवरिया...अध्यक्ष पद के लिए’। बोलरो के बगल में उनके मित्र, सहकर्मी और रिश्तेदार का बेटा अखिलेश अपने मित्रों के साथ हंसी-मजाक कर रहा था। सफेद कुर्ते-पाजामें और काली बंडी में वह एक फिल्मी हीरो से कम नहीं दीख रहा था। स्वस्थ, तरोताज़ा, ऊर्जा से भरपूर। धन भी कुछ कर गुज़रता है, मानना पड़ेगा।

वर्षों पहले इस अति प्रतिभाशाली पर कुसंगत का शिकार युवक को कालेज से निकलवाने में न्यायप्रिय, कवि-हृदय रामनारायण ने प्राचार्य का साथ दिया था, रिश्तेदारी को आड़े आने नहीं दिया। उसके बाद अनेक वर्षों तक अखिलेश यहां-वहां टक्कर मारता रहा पर असफलता के सिवा कुछ हाथ नहीं लगा। फिर अचानक छप्पर फटा। दवा के धंधे में उसने पिछले तीन-चार वर्षों में ही करोड़ों कमाकर रख दिया।

शुरुआती हिचक के बावजूद दोनों व्यक्ति एक-दूसरे की ओर बढ़े। अखिलेश ने उनके पैर छुए, रामनारायण ने उसे भावभीनी आशीर्वाद दिया।

“महापालिका के अध्यक्ष पद के लिए खड़ा हो रहा हूँ। आपका आशीर्वाद चाहिए।” अखिलेश ने मुस्कराते हुए निवेदन किया।

रामनारायण ने अपने छोटों वाला कुर्ता आगे करते हुए चुटकी ली, “जब अध्यक्ष होने के पहले यह हनक है तो अध्यक्ष होने के बाद क्या करोगे?”

पास खड़े सभी लोग हंस पड़े। अखिलेश ने खेद जताया, माफी मांगी। आत्मीय बातों का सिलसिला चल पड़ा। गिले-शिकवे घुलने लगे। अखिलेश ने अपने मित्र अरुण को रामनारायण का पुर्जा थमाकर रजिस्ट्रेशन के लिए अंदर भेजा। बहुत भीड़ है। मैं दिखा दूंगा।

“तुम्हारे पिताजी, चिंतामणि का क्या हाल है?” रामनारायण ने पूछा।

“खूब मजे में है।” अखिलेश ने बताया,

“घर भर के नाक में दमकर रखा है। कोई परहेज ही नहीं करते।” सीधे रसोई घर में घुस जाएंगे। पकौड़ी, छोला-बटूरा, खोवा-मलाई सब निकाल कर थाली में भर लेंगे। बोलने पर कहेंगे, टोका-टाकी मत करो, इस चलती बेला। चुपचाप खाने दो।”

“क्या गुलत कहते हैं?” रामनारायण बोले।

“अरे तो यह चलती बेला आखिर आएगा कब? तेईस साल तो हो गए रिटायर हुए।” अखिलेश कहकर ठिठक गया।

“खूब कोसो, हम लोगों को। फलता है। उम्र बढ़ जाती है।” रामनारायण मुस्कराकर बोले।

“मुझे अन्यथा न लें।” अखिलेश ने झेंपते हुए सफाई दी।

“सबसे अच्छा यह है कि खूब खिला-पिलाकर चलता करो उन्हें। तुम भी खुश हो भी खुश।” रामनारायण ने हंसते हुए आगे जोड़ा।

पास खड़े सभी लोग हंसने लगे।

अखिलेश रामनारायण को लेकर अस्पताल के अंदर दाखिल हुआ। उसका परिचय और प्रभाव साफ दीख रहा था। डॉक्टर इनसेफलाइटिस वार्ड में राउंड पर था। उसने रामनारायण की एक सरसरी जांच की और पुराने पुर्जे पर निगाह दौड़ाई। कहा, ‘इनहेलर तीन बार कर दीजिए। ... ब्लडप्रेशर भी बढ़ा हुआ है। ... दवाएं नियमित ले रहे हैं न?’

रामनारायण मौन रहे। डाक्टर ने प्रश्नावचक दृष्टि उनकी ओर उठाई।

“दरअसल इधर कुछ गैप हो गया”, उन्होंने सकुचित भाव से स्वीकार किया, “पचास रुपये का फार्म लो अब पांच सौ में मिल रहा है। खरीदने में दिक्कत होती है।”

“यह खतरनाक साबित हो सकता है”। डॉक्टर पुर्जे दर पर नई दवाइयां लिखने लगा। वार्ड के कोने से इसी बीच कोई महिला एकाएक छाती फाड़ कर रोने लगी। डॉक्टर ने वार्ड ब्याथ को उसे बाहर हटाने का इशारा किया, फिर रामनारायण की ओर रुख किया। “पेंशन तो मिलती होगी?”

“हां। उसी से सारे घर का खर्च चलता

है। चलता क्या घसीटता है”, रामनारायण ने उत्तर दिया।

डॉक्टर ने पुर्जा अखिलेश को पकड़ाया, “इसमें कुछ दवाइयां यहां मिल जाएंगी”। अखिलेश ने पुर्जा अरुण के हवाले किया।

तीनों व्यक्ति भरीजों के ड्रिप लगे बिस्तरों के बीच से होते हुए बाहर की ओर निकले। ... लार टपकाते, निर्जीव होते शिशु-मुख, ऑक्सीजन, मास्क के भीतर अंतिम हिचकी लेते किशोर, खिलखिलाते, किलकारी लेते मुख भी, पर सदैव के लिए विकृत टेढ़े-मेढ़े मुख। मौत की एक सड़ी गंध, इस सिरे से उस सिरे तक तैरती-लहराती, डराती, दम घोटती। भागो-भागो, इस मरघटी मंडी से। तुम या तुम्हारी बीमारी नितांत, अप्रासांगिक है और बेमानी है।

“यहां आकार साक्षात् नरक का अहसास होता है!” अरुण बाहर आकर नाक पर से रुमाल हटाते हुए बोला।

“इनसेफलाइटिस नहीं इसे सुनामी कहो। सभी को पंगु, बेवस कर देने वाली।” अखिलेश निर्लिप्त दार्शनिक भाव से बोला।

वे बरामदे में आ गए। अखिलेश बीच-बीच में लोगों से हाथ-हेलो करता रहा। वह रामनारायण से अपने भविष्य के आदर्श स्कूल, जिसका अधीक्षक उन्हीं को बनना है, के बारे में भी बताता रहा। धीरे-धीरे वे परिसर की ईंटों वाली पगडंडी पार कर अस्पताल के मुख्य फाटक तक आ गए।

“अरुण आ जाए तो मैं आपको घर छोड़ दूँ।” अखिलेश ने इधर-उधर देखते हुए कहा।

सामने सड़क पर पानी की हलचल देख रामनारायण बोले, “घर नहीं, वस ये वैतरणी पार करा दो”।

अखिलेश ज़ोरों से हंसा।

अरुण के आने बाद वे गाड़ी में बैठकर सड़क पर आ गए।

कार ड्राइव करते-करते अखिलेश ने आत्मविश्वास से लवरेज लहजे में घोषणा की “इस वैतरणी की तो मैं ऐसी-की-तैसी करूंगा कि आप देखते रह जाइएगा।”

“ऐसे दावे सुनते-सुनते मेरे कान पक गए।...बस आगे दाहिने गली के मोड़ पर रोक

दो।” रामनारायण ने किनारे की सूखी ज़मीन की ओर इशारा किया।

गाड़ी ऊंचे सूखे पर आकर रुक गई। अरुण रामनारायण को सहारा देकर नीचे उतारा। फिर दवाइयों का पैकेट रामनारायण की ओर बढ़ाया, ये आपकी दवाइयां और इनहेलर”।

“अस्पताल से मिली?” रामनारायण ने पूछा।

“नहीं। अस्पताल की दवाइयों को तो आप जानते ही हैं। मैं इन्हें अपनी पहचान की एक दुकान से लाया हूँ। ... जेन्युइन।”

“रामनारायण ने दवा लेने का कोई भाव नहीं दिखाया।”

“मैं पैसे आकर आपसे ले लूंगा।” “अखिलेश ने जल्दी-जल्दी उन्हें आश्वस्त किया। रामनारायण वैसे ही निष्क्रिय खड़े रहे। अरुण और अखिलेश ने एक-दूसरे की ओर देखा। राम नारायण ने एक मिनट बाद कहा, “चलो तुम लोग।” और अपने घर की ओर मुड़ गए। दोनों मित्र हतप्रभ! अरुण आगे बढ़कर बोला, “क्या बात है चाचा जी?...हम लोग भी आपके पुत्र तुल्य हैं...शिष्य भी रहे। हमें बताइए न बात क्या है?”

रामनारायण मौन, चलते रहे। कुछ बोले नहीं। वातावरण एकाएक योजित एवं तानवपूर्ण हो गया।

“मैं बताता हूँ, बात क्या है?” अखिलेश एक मिनट बाद कुछ उत्तेजित, चुभती आवाज़ में बोला। सभी रुक गए।

“युधिष्ठिर को इसमें सचान के खून की बू आती है।” एकाएक गहरा सन्नाटा छा गया। अरुण को यह उक्ति वेहद, अप्रासांगिक अनावश्यक एवं अरुचिकर लगी। उसने मित्र को फटकारा, “क्या अंड-मंड बकते रहते हो हरदम”।

रामनारायण ने घूमकर अखिलेश के उग्र होते तेवर को देखा फिर दवाइयों के पैकेट के लिए अरुण की ओर हाथ बढ़ाए। अखिलेश ने अरुण के हाथ से पैकेट छीनकर अपने हाथ में ले लिया। उसका चेहरा तमतमा रहा था।

“कुछ ज्ञानी लोग अहम से अहम मसले को भी पैसे से जोड़कर देखते हैं। उनकी ज़ेहन में यह नहीं धंसता कि सारा पैसा रहते हुए भी

हट्टे-कट्टे यश चोपड़ा को डेंगू का एक मच्छर कैसे ले उड़ा। तीव्र उपेक्षा एवं तिरस्कार से उसकी वाणी कांप-सी गई।

रोकते-रोकते भी रामनारायण के चेहरे पर एक झीनी मुस्कान तैर गई। वे अखिलेश की पुरानी एक सी तीस बुद्धि-लब्धि वाली मेधा को आग पकड़ते देख रहे थे।

एक मिनट ठहरकर उन्होंने ठंडी सांस ली, फिर बोले “डेढ़ दशक पहले मेरी पुत्री अपनी छह वर्षीय बेटी के साथ देवरिया छुट्टियां मनाने आई थी। नतिनी को बुझा आया। इसी सरकारी अस्पताल में भरती किया। मरीजों की भीड़, बेड की कमी, चिकित्सकों की रुखाई सब सर्वकालीन थी। समय से आक्सीजन न मिल पाने के कारण उसने तड़प-तड़प कर जान दे दी। तबसे अब तक कुछ भी नहीं बदला। पहले सैकड़ों की संख्या में मरते थे, अब हजारों की। ...आखिर कहीं तो जवाबदेही बनती है इन होलसेल हत्याओं की!”

एक मिनट तक सभी चुप रहे। फिर अरुण भौंहे सिकोड़कर बोला, “वो तो ठीक है चाचाजी, पर इसमें हम लोग कहां से आते हैं?”

रामनारायण ने एक माकूल उत्तर देने के लिए अपने आँठों को हिलाया, फिर शांत हो गए।

“आते हैं न। अखिलेश ने तीव्रता से मुंह घुमाकर व्यंग्य किया, “आखिर केंद्र और प्रदेश के भरपूर प्रयासों को डेढ़ दशक से कौन पलीता लगाता रहा है। हमी न? उसने दवाइयों का पैकेट दूर बहती नाली में फेंक दिया।” इसके अलावा हम चित्रांशी भी हैं। यमराज का बही खाता हमारे जिस्में रहता है। सबका वारंट हमी काटते हैं, डेट भी हमी भरते हैं। मन माफ़िक।” लगता था वह कहीं बहुत अंदर से घायल हो गया था।

सन्नाटा और गहरा गया। ऊपर धिर आए बादलों से कुछ बड़ी-बड़ी बूंदें टपकने लगीं। रामनारायण ने छाता खोला, फिर बोले, “आओ घर चलो। चाय पीकर जाओ। वारिश आ रही है”।

रामनारायण के निमंत्रण को धृष्टता से दरकिनार करते अखिलेश अरुण को साथ ले “अपनी बोलेरो की ओर बढ़ा।

“सब अपना-अपना भाग्य लेकर आते

हैं।” दो कदम जाने के बाद वह पलटकर तेज़ी से बोला। उसकी आवाज़ उत्तरोत्तर ऊंची होती जा रही थी। “यह नहीं पलटने वाला। चाहे लाख सर फोड़ लिया जाए”। वह दौड़ते हुए ज़माज्रम बारिश के शोर के ऊपर से हांफते हुए चिल्लाया।

“इस सृष्टि में सभी को अपने अस्तित्व का हक प्राप्त है। बिना सबके यह सृष्टि कम्पलीट नहीं होती। ...अगर वस्तु-स्थिति को स्वीकार करने की क्षमता अभी तक नहीं विकसित हुई तो जीवन के चौरासी वर्ष नाली में बह गए।”

रामनारायण समझ रहे थे। अखिलेश के निशाने पर कोई अदृश्य भी था। उन्हें ज़रा भी बुरा नहीं लग रहा था।

शाम तक बादल छंट गए। क्षितिज के एक कोने में सुदूर मोबाइल टावरों को लांधता इंद्रधनुष का एक टुकड़ा उग आया। सारे विषाद को झटकारते रामनारायण का मन मयूर नाच उठा।

इन्द्रधनुष, तुम रोज़ उगो,
मेरे छत पर, उसके छत पर, सबके छत पर,

किसी छोर तो मिल जाएगा,
स्वर्ण कलश।

तीसरे दिन पुत्र का नियुक्ति पत्र आ गया। प्राइमरी स्कूल का अध्यापन, बीस किलोमीटर दूर ताजपुर में। सत्रह हजार वेतन। पूरे परिवार में खुशी की लहर दौड़ गई। यूं भी रामनारायण, पुत्र द्वारा जुगाड़ कर लाई दवाइयों और इनहेलर का नियमित इस्तेमाल करके बेहतर महसूस कर रहे थे। अब वे निश्चित और प्रसन्न थे। गुरुदेव, रेडी आई एम!

अक्सर पुत्र और पुत्रवधू मकान के पीछे खाली तीन प्लाटों (जो मुहल्ले के कूड़ाघर और शौचालय में तब्दील हो चुके थे) से उठती दुर्गंध से निज़ात पाने के लिए अखिलेश की जीत की कामना किया करते थे।

एक दिन बाज़ार से आकर सामान का झोला उतारते उनका पुत्र रामनारायण से बोला, “आप नाहक सबको नाराज़ करते फिरते हैं।”

“क्या हुआ?” उन्होंने विस्मय से पूछा।

“आपको मालूम है, अखिलेश किस मिशनरी ज़ील से काम कर रहा है? ... कैलाश

नगर की पूरी सड़क उसने अपने पैसे से बनवा डाली। लाख रुपयां निकल गया उसकी जेब से।”

“गुड़! ...” रामनारायण ने प्रशंसा के भाव से सिर हिलाया। फिर अस्फुट स्वरों में जोड़ दिया, मॉल इनवेस्टमेंट।

पुत्र ने उनको वक्र दृष्टि से घूर कर देखा।

इसके पहले कि वह कुछ कहता वे अपने कमरे में सरक आए। थोड़ी ही देर बाद रसोईघर से उसकी खीज भरी आवाज़ सुनाई पड़ी। पत्नी से कह रहा था, “बाबू जी विलकुल सनकी हो गए हैं।”

“क्या सचमुच?” उन्होंने सोचा फिर अपने कंधे बिचकाए “डैम इट।” तीन-चार दिन और बीते। सभी कुछ पटरी पर आने लगा।

उस इतवार की रात घोड़ा बेचकर सोए रामनारायण। गुरुदेव अब खांजे नहीं मिलते। वे जाने, उनका काम जाने। मैं तो मस्त हूं।

सुबह जब उनकी नींद खुली तो खिड़की से धूप आकर बिस्तर पर गिर रही थी। वे उठे। हाथ-मुंह धोया और चाय के लिए आवाज़ दी।

थोड़ी देर बाद गुड़िया भाप उगलती चाय का एक बड़ा प्याला लेकर आ गई। “थैंक यू फ़ैटी” रामनारायण ने उसकी चुटिया खींचकर उसे धन्यवाद दिया।

“चाय पी लीजिए तो आपको एक बात बताऊं।” गुड़िया ने आंखें नचाते हुए कहा।

“क्या?”

आप पहले चाय तो पी लीजिए।

“बता न!” रामनारायण ने प्याला उठाकर चाय सुड़कते हुए पूछा।

“अखिलेश चाचा थे न...वे एक्सपायर हो गए।”

रामनारायण के हाथ का प्याला डगमगा गया। उनकी निगाह अंदर से पल्लू समेटते मोबाइल कान से लगाए धीरे-धीरे उनकी ओर बढ़ते अपनी बहू पर पड़ी। पास आकर वह ठंडी आवाज़ में बोली, “अखिलेश भैया नहीं रहे। ... रात को सोए, फिर सुबह नहीं उठे। शायद हार्ट फेल हो गया।” □

संपर्क : द्वाग गोंविन्द चन्द, क्षेत्रीय ग्रामीण बैंक, गमपुर कारखाना, देवरिया (उ.प्र.)

समकालीन हिंदी तथा मराठी कविता

हिंदी तथा मराठी का समकालीन साहित्य मात्र समाज का दर्पण नहीं है बल्कि वह नई पीढ़ी का पथ-प्रदर्शक भी है जो सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं एवं बारीकियों का लेखा-जोखा व्यापक यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करता है। बता रहे हैं भाऊसाहेब नवनाथ नवले

वस्तुतः साहित्य से तात्पर्य उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता से हैं। सही माने में साहित्य समाज का मात्र दर्पण नहीं है बल्कि वह नई पीढ़ी का पथप्रदर्शक भी है जो सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं एवं बारीकियों का लेखा-जोखा यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करता है। साहित्य की विभिन्न विधाओं के केंद्र में सामाजिक पक्ष की हिमायत ही रहती है। कथा, कविता, नाटक, एकांकी, जीवनी, आत्मकथा तथा यात्रा साहित्य आदि विधाओं के माध्यम से साहित्य सामाजिक पहलुओं को उद्घाटित करता है। वह शोषित एवं उपेक्षित समाज को व्यापक एवं मानवीय धरातल पर जीवन के प्रति आस्थावान बनाता है। भारतवर्ष अपनी बहुभाषी, बहुधर्मीय, बहुजाति एवं सामासिक संस्कृति के कारण महत्वपूर्ण भूमिका अदा करता है।

तुलनात्मक साहित्य का अध्ययन वर्तमान समय एवं समाज की महत्वपूर्ण आवश्यकता बनी हुई है। तुलनात्मक साहित्य के माध्यम से हम विभिन्न भाषा-भाषी साहित्य एवं साहित्यकार, संस्कृति, संस्कार, समाज एवं परिवेश से परिचित हो जाते हैं, जो राष्ट्रीय विकास की धारा को समृद्ध बनाने में महत्वपूर्ण दायित्व वहन करता है। हिंदी तथा मराठी साहित्य में सामाजिक प्रतिबद्ध साहित्य एवं साहित्यकारों का आरंभ प्राचीन काव्य से माना जा सकता है। हिंदी में जहां कबीर, मीरा, रविदास आदि कवियों का उल्लेख मिलता है, वहां मराठी साहित्य में नामदेव, चोखामेळा, ज्ञानेश्वर, समर्थ रामदास, तुकाराम, एकनाथ आदि ने सामाजिक न्याय एवं प्रतिबद्धता की पुरजोर हिमायत की है। उन्होंने प्रचलित अंधविश्वास, रूढ़ि-परंपरा तथा जाति भेदवाली मानसिकता को उजागर करते हुए सामाजिक मुक्ति, विसंगति एवं आडंबरों पर प्रहार किया है। प्राचीन परंपरा से होते हुए यह सामाजिक प्रतिबद्धता का स्वर स्वतंत्रता पूर्व काल से लेकर स्वतंत्रता प्राप्ति एवं स्वातंत्र्योत्तर काल में अत्यधिक मात्रा में प्रखर होता नजर आता है।

डॉ. मधुसूदन साहा का कहना है - "हिंदी के कुछ चिंतकों का मानना है कि दलितों द्वारा दलितों के लिए लिखा गया साहित्य ही दलित साहित्य है। .. दलितेतर लेखकों द्वारा लिखी गयी उन तमाम कृतियों का क्या होगा जो ज्योतिबा फुले, डॉ. बाबासाहेब अंबेडकर की दलित चेतना के पूर्व समाज के उपेक्षित, उत्पीड़ित, घृणित और दलित लोगों को केंद्रित कर रखी गई थीं। क्या बुद्ध से लेकर तुलसीदास और रवीन्द्रनाथ ठाकुर से लेकर राजा राममोहन राय की दलित संवेदना पर आधारित समस्त कृतियों को .. दलित चेतना की परिधि से खारिज कर दिया जाए ?" कहना गलत न होगा कि साहित्य, चाहे वह किसी भी जाति या धर्म के लेखक द्वारा प्रस्तुत किया हुआ हो, उसका मूल स्वर सामाजिक प्रतिबद्धता का होना वर्तमान समय एवं समाज की आवश्यकता

है। मेनका श्रीवास्तव का कहना है कि "अपने काव्य संसार में लोकतत्त्वों को वही कवि समेट सकता है जो अपनी जिंदगी को सच्चाई से, लोक संसार यानी आम जनता, समाज से जोड़ें रखा हो।" स्पष्ट है कि कवि का अनुभव जगत ही उसकी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचायक होता है।

प्रस्तुत आलेख में समकालीन हिंदी तथा मराठी साहित्य के विषय एवं भाव पक्ष के साथ सामाजिक पक्ष एवं प्रतिबद्धता को विवेचित करने का प्रयास किया गया है। समसामयिक परिवेश एवं उसका सच्चापन, शोषकों की साजिशों का पर्दाफाश करने में समकालीन कविता की महत्वपूर्ण भूमिका रही है। समकालीन हिंदी तथा मराठी कविता मूल्यों की लड़ाई को अभिव्यक्त करती नजर आती है।

किसान परिवार में जन्में मराठी भाषी कवि इंद्रजित भालेराव ने अपनी रचनाओं के माध्यम से अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता एवं न्याय की बुलंद आवाज का परिचय दिया है। 1975 के बाद मराठी ग्रामीण कविता को समृद्ध बनाने में उनका अवदान महत्वपूर्ण रहा है। दलित, पीड़ित किसानों के दर्द एवं व्यथा को वाणी देकर कवि ने व्यवस्था की पोल खोल दी है। 'टाहो' कविता संग्रह के कारण उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का विशेष पहलू उभरकर आता है—

शीक बाबा शीक लढायला शीक
कुणव्याच्या पोरा आता लढायला शीक
(सीख बेटा सीख लड़ना सीख
कुंभे के बच्चे अब संघर्ष करना सीख)

यहां कवि सामाजिक वैषम्य एवं उसके शिकार अभावग्रस्त परिवार की व्यथा को वाणी देता है। कवि गरीब किसान परिवार के बेटे से पढ़ने-लिखने की अपील करते हुए अन्याय, अत्याचारों को सहने की अपेक्षा शोषकों के खिलाफ आवाज बुलंद करते हुए लड़ने के लिए प्रवृत्त करता है। कवि को मालूम है कि पढ़ाई लिखाई से ही शोषण से छुटकारा मिल सकता है।

कुंवरनारायण 'आत्मजयी' में लिखते हैं— "कोई भी दुःख-मनुष्य के साहस से बड़ा नहीं/वही हारा/जो लड़ा नहीं" कुंवरनारायण उस व्यक्तित्व की हिमायत करते हैं, जो लड़ाऊ है। वे यहां तक कह देते हैं कि वही मनुष्य हारता है जो लड़ता नहीं है। यहां इंद्रजित भालेराव उस युवा को अभिव्यक्त करते हैं जो पढ़ाई के बूते पर लड़ाई के मैदान से अलग हो जाए। कुंवरनारायण उसी आत्मविश्वास के साथ कह देते हैं कि कोई भी दुःख चाहे वह असीम भी क्यों न हो, वह अंततः साहस से बड़ा नहीं होता।

सर्वेश्वर दयाल 'सक्सेना' की बहुआयामी दृष्टि भी उनकी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय देती है। रोहिताश्व का मानना है कि "सर्वेश्वर अपनी प्रारंभिक रचनाओं में मध्यवर्गीय संवेदना और लोहियावादी आस्थाओं के कवि रहे हैं। वे परवर्ती काव्य-संरचना में प्रगतिशील कवि दृष्टि और नक्सलवादी चेतना के रचनाकार प्रमाणित होते हैं।" सर्वेश्वर का संवेदना पक्ष काफी सशक्त तेवरों के साथ उभरता है। कवि का प्रगतिशील होना ही कवि की

सामाजिक प्रतिबद्धता कही जा सकती है जिसके माध्यम से वह स्वयं को व्यष्टि नहीं अपितु समष्टिहित की अपिल करता है। 'कुआनो नदी' में कवि की किसान-विषयक दृष्टि का पता चलता है—

यह खेतिहर मजदूर भूख से मर गया
यह चौपाए के साथ बाढ़ में वह गया...
लू में टपक गया
यह एक छोटे से रोजगार के सहारे,
जिंदगी काट ले जाना चाहता था
पर जाने क्यों रेल से कट गया। "

दृष्टव्य कथन से विदित होता है कि कवि ने अपनी प्रगतिशील सोच का परिचय देते हुए किसान की अभावग्रस्त जिंदगी का लेखा-जोखा प्रस्तुत किया है। दयनीय जीवन किसानों के जीवन का मानो अविभाज्य अंग बना है। समकालीन मराठी साहित्य में किसानों की आत्महत्याओं पर काफी कविताएं मिलती हैं, वहां समकालीन हिंदी कविता भी अपने विविध तेवरों के साथ प्रस्तुत होती है जिनमें कवि की सामाजिक प्रतिबद्धता को बेबाक प्रस्तुत करती है।

मराठी साहित्य में वामन दादा कर्डक प्रतिभासंपन्न महाकवि के रूप में परिचित हैं। मराठी के समीक्षक डॉ. च. वि. जोशी का कहना है कि "पूँजीपति, उच्चवर्ग, विषमता, दलित एवं मजदूरों पर होता अन्याय एवं अत्याचार आदि को उन्होंने केंद्र में रखा है।" वामन दादा कर्डक ने समाज प्रबोधन तथा क्रांति की मशाल लेकर अपनी सामाजिक प्रतिबद्धता का परिचय दिया है।

कवि वामन दादा कर्डक ने आम जन की आवाज बुलंद करते हुए पूँजीपतियों पर प्रहार किया है। यह आवाज समाज के दलित, मजदूर एवं पीड़ित लोगों की है।

जनतांत्रिक एवं राजनीतिक विकृतियों को उजागर करते हुए कवि नागार्जुन का मन व्यथित रहा है। वे जानते थे लोकतंत्र जहां जनता का राज नहीं है, पूँजीपति एवं तानाशाही मानसिकता जोर पकड़ती जा रही है। सामाजिक वैषम्य को अभिव्यक्त करते हुए नागार्जुन तत्कालीन राजनीतिक मानसिकता पर व्यंग्य प्रहार भी किए हैं। कहना सही होगा कि कवि ने तत्कालीन राजनीति पर प्रकाश डाला है। जहां एक ओर आम जन दाने-दाने के लिए मुहताज होता था, वहां भारतवर्ष के पूँजीपति जिनके लिए दिवाली कोई महत्त्व नहीं रखती है। चाहे टाटा हा या बिरला या डालमिया उनके लिए हर दिन दिवाली है। कवि ने यहां सामाजिक विषमता की खाई को प्रस्तुत किया है।

कवि वामन दादा कर्डक ने आम जन की आवाज बुलंद करते हुए पूँजीपतियों पर प्रहार किया है। यह आवाज समाज के दलित, मजदूर एवं पीड़ित लोगों की है। समकालीन मराठी कविता में जहां किसानों की व्यथा का जिक्र अत्यधिक मात्रा में मिलता है वहां समकालीन हिंदी कविता में मजदूरों के शोषण को पर्याप्त मात्र में वाणी मिली है।

नामदेव ढसाल मराठी दलित लेखकों में अपनी लेखकीय प्रतिबद्धता के कारण जाने ही नहीं बल्कि माने भी जाते हैं। मराठी में नामदेव ढसाल ने स्वाधीनता की परिभाषा पर प्रश्नचिह्न लगाया है, वहां हिंदी में नागार्जुन की रचना में भी उसी स्तर पर व्यंग्य की अभिव्यक्ति हुई है। प्रगतिशील विचारों के वाहक के रूप में दोनों का व्यक्तित्व बेजोड़ कहा जा सकता है।

नामदेव ढसाल स्वाधीन भारत की संकल्पना पर ही प्रश्न चिह्न उठाते हैं। कवि स्वाधीनता के प्रति तथा व्यवस्था के प्रति घृणा प्रस्तुत करता है। देश के आजाद होने के उपरांत स्वाधीन देश से कुछ आशा-आकांक्षाएं एवं उम्मीदें थीं लेकिन पूरे सपने चककाचूर हो गए। यहां तक कि स्वाधीन भारत में मूलभूत आवश्यकताओं की पूर्ति होना भी दुभर हुआ है। इसलिए कवि नामदेव ढसाल स्वयं को स्वाधीनता की परिकल्पना से अनभिज्ञ मानते हैं। नागार्जुन '26 जनवरी, '15 अगस्त' कविता में स्वाधीन भारत की पोल खोल देते हैं। वस्तुतः हम लोग राष्ट्रीय पर्व के रूप में 'गणतंत्र दिवस' तथा 'स्वाधीनता दिवस' धूमधाम से मनाते हैं लेकिन नागार्जुन का कहना है—

"किसकी है जनवरी, किसका अगस्त है?

कौन यहां सुखी है, कौन यहां मस्त है ? "

यहां स्वाधीनतापरांत निर्मित भयावह परिस्थितियों का लेखा-जोखा प्रस्तुत हुआ है। जहां समाज का आम जन शोषण की चक्की की पाटों में पिसता जा रहा है वहां उनके लिए राष्ट्रीय पर्व का कोई औचित्य नहीं है। यहां कवि ने स्वार्थांध लोगों की कूट मानसिकता पर प्रहार किया है।

मराठी के सिद्धहस्त कवि एवं मजदूरों के मसीहा नारायण सुर्वे ने अपनी अनुभूति को अभिव्यक्ति में बदल डाला है। उनका व्यक्तित्व प्रगतिशील विचारधारा से ओत-प्रोत रहा है। इनकी कविता का वैचारिक एवं सामाजिक पक्ष निश्चित ही जनकेंद्रित है। आशावाद एवं जीजीविषा कवि का स्यायीभाव कहा जा सकता है। 'चार शब्द' शीर्षक कविता में वे कहते हैं—

रोजच्या रोटीचा सवाल रोजचाच आहे
कधी फाटकाबाहेर कधी फाटका आत आहे
कामगार आहे मी तळपती तलवार आहे
सारस्वतांनो! थोडासा गुन्हा करणार आहे...
एकटाच आलो नाही युगाचीही साथ आहे
सावध असा तुफानाची हीच सुरवात आहे।"
(हर दिन की रोटी का सवाल हर दिन उठता है
कभी गेट के अंदर तो कभी गेट के बाहर
श्रमिक हूं मैं तेजोमय तलवार हूं
सारस्वतों! थोड़ा-सा गुनाह करनेवाला हूं
अकेला नहीं आया सदियों भी साथ है
संभल जाइए, ये तूफान की शुरुआत है।

नारायण सुर्वे ने मुंबई के मजदूरों को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत किया है। मिल मालिक तथा पूँजीपतियों से होने शोषण को कवि ने अभिव्यक्त करते

हुए मजदूरों की असह्य मानसिकता से उपजी चेतना को भी वाणी दी है, जो शोषकों के लिए संकेत माना जा सकता है।

प्रगतिशील विचारधारा का बेबाक व्यक्तित्व जनकवि नागार्जुन ने समाज के गरीब, सर्वहारा, शोषित एवं पीड़ित समाज के दुःख को यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत किया है। सदियों से शोषित जनता की आवाज में ताकत भरते हुए 'काली माई' में वे लिखते हैं—

हम को क्या, हम तो यों ही पिसते आए हैं,
... कल के पुर्जे हैं, पिसते आए हैं ¹⁰

नागार्जुन ने पूंजीपति एवं धनपतियों की शोषक वृत्ति को उजागर किया है लेकिन सामाजिक न्याय के पुरोधा बाबा नागार्जुन शोषित एवं उपेक्षित समाज को आश्वस्त करते हैं कि राष्ट्र या भविष्य के पुरोधा आप ही हैं। नागार्जुन पाठकों को सोचने के लिए बाध्य करते हैं।

समकालीन हिंदी कविता व्यवस्था के असीम शोषण, अत्याचार एवं दमन का विरोध करते हुए मानव मन में साहस निर्माण करने में अग्रस्थ रही है। मंगलेश डबराल 'पहाड़ पर लालटेन' में शोषितों की विवश वाणी को तीखे तेवरों के साथ अभिव्यक्त करते हैं—“दूर तक एक लालटेन जलती है पहाड़ पर, एक तेल की आंख की तरह, टिमटिमाती धीरे-धीरे आग बनती हुई, देखो अपने गिरवी रखे हुए खेत, बिलखती स्त्रियों के उतारे गए गहने, देखो भूख, से, महामारी से मरे हुए, सारे लोग उभर आए हैं चट्टानों से दोनों हाथों से बेशुमार बर्फ फाड़कर, अपनी भूख को देखो, जो मुस्तेद पंजे में बदल रही है, जंगल से लगातार एक दहाड़ आ रही है और इच्छाएं दांत पੈने कर रही हैं।”¹¹ कहना सही होगा कि मंगलेश डबराल ने पहाड़ पर लालटेन जलाकर उपेक्षित एवं पीड़ित समाज की चेतना के बीज पहाड़ों पर बोए हैं, जिसे वे आम जमीन पर उगते देखना चाहता है। कवि आजीवन शोषण की चक्की के पाटों में पिसते जन में क्रांति की ज्वाला प्रज्वलित करना चाहता है। भले ही यह पहला चरण अवश्य है लेकिन कवि को उम्मीद है कि यही ज्वाला व्यापक धरातल पर प्रस्तुत होगी।

नई पीढ़ी के हस्ताक्षरों में मराठी के दलित विचारक डॉ. मनोहर जाधव का नाम महत्वपूर्ण माना जा सकता है जिनका स्थायीभाव अन्याय के खिलाफ आवाज उठाना तथा शोषित समाज को व्यापक धरातल पर प्रस्तुत करना रहा है। 'कधी-कधी' रचना में वे लिखते हैं—

पाखरांनी
मूळचे संदर्भ नाकारलेत
मागच्या पिढ्यांनी
बाभळीच्या झाडांशी केलेला करार
उधळून लावलाय
विद्रोहाचा ज्वालामुखी भडकतोय ¹²
(पंछियों ने
बुनियादी संदर्भों को नकार दिया है
पिछली पीढ़ियों ने
बबूल के पेड़ों के साथ किए हुए अनुबंधों को तुकरा दिया है
विद्रोह की ज्वालामुखी धधक उठी है)

कवि ने उस पीढ़ी का प्रतिनिधित्व किया है जो नए सिरे से सामने आ रही है जो पंछियों की तरह मुक्त संचार करना चाहती है। इस पीढ़ी ने अपने

पूर्वजों की लाचार जिंदगी को समझा है और अपने अधिकारों के प्रति यह सचेत नजर आती है। यहां तक कि वह अब शोषकों के खिलाफ विद्रोह करते हुए अपनी आवाज बुलंद कर रही है।

हिंदी तथा मराठी का समकालीन साहित्य मात्र समाज का दर्पण नहीं है बल्कि यह नई पीढ़ी का पथ-दर्शक भी है जो सामाजिक विसंगतियों, विषमताओं एवं बारीकियों का लेखा-जोखा व्यापक यथार्थ धरातल पर प्रस्तुत करता है। समकालीन हिंदी साहित्य में जहां बाबा नागार्जुन, मंगलेश डबराल, सर्वेश्वर दयाल सक्सेना तथा कुंवरनारायण आदि कवियों ने सामाजिक न्याय की लड़ाई लड़ी है वहां समकालीन मराठी रचनाकारों के तेवर भी काफी सशक्त परिलक्षित होते हैं। सामाजिक प्रतिबद्धता एवं सामाजिक न्याय की हिमायत करनेवाले रचनाकारों में नारायण सुर्वे, नामदेव ढसाळ, इंद्रजित भालेराव, वामन दादा कर्डक तथा मनोहर जाधव आदि नामों का उल्लेख प्रमुख रूप से किया जा सकता है।

समकालीन मराठी कविता में जहां किसानों की व्यथा का जिक्र अत्यधिक मात्रा में मिलता है वहां समकालीन हिंदी कविता में मजदूरों के शोषण को पर्याप्त मात्रा में वाणी मिली है। लेकिन ध्यातव्य बात यह कि समकालीन हिंदी तथा मराठी कविता ने अपने विषय पक्ष को व्यापक धरातल पर यथार्थ वाणी दी है। हिंदी तथा मराठी समकालीन कविता का मुख्य स्वर न्याय की लड़ाई रहा है। समाज में शोषण तथा व्यवस्था की समाजविघातक प्रवृत्ति का लेखा-जोखा प्रस्तुत करने में समकालीन हिंदी तथा मराठी कविता अपने सशक्त अंदाज के साथ प्रस्तुत हुई है, इस सच्चाई को स्वीकार करना पड़ता है। अंततः कहा जा सकता है कि समकालीन मराठी कवियों की न्याय की लड़ाई के तेवर काफी विद्रोहात्मक परिलक्षित होते हैं, जबकि समकालीन हिंदी कवियों द्वारा लड़ी न्याय की लड़ाई में विद्रोहात्मक प्रवृत्ति सहज रूप में अभिव्यक्त हुई है।

संदर्भ

1. दलित साहित्य : दशा और दिशा आलेख से
2. 'आजकल', अक्टूबर, 2005, पृष्ठ-32, (नागार्जुन के काव्य में लोकतत्त्व आलेख से उद्धृत)
3. सं. डॉ. बाळासाहेब गुंजाळ - शीक बाबा शीक, काव्यकस्तुरी, पृष्ठ-9
4. कुंवरनारायण—आत्मजयी
5. सं. डॉ. रतनकुमार पांडेय- अनभै, जनवरी-मार्च, 2005, पृष्ठ- 32
6. सर्वेश्वर दयाल सक्सेना - प्रतिनिधि कविताएं, पृष्ठ-109
7. डॉ. च. वि. जोशी - काव्य कस्तुरी, पृष्ठ-53
8. नागार्जुन की चुनी हुई रचनाएं-2, पृष्ठ-202
9. सं. कुसुमाग्रज - निवडक नारायण सुर्वे, पृष्ठ-1
10. नागार्जुन - काली माई
11. मंगलेश डबराल - पहाड़ पर लालटेन
12. डॉ. मनोहर जाधव - कधी-कधी, पृष्ठ-9

संपर्क : हिंदी विभाग, प्रवरा ग्रामीण शिक्षण संस्था का कला, विज्ञान एवं वाणिज्य महाविद्यालय, कोल्हार (बु)
तहसील - राहाता, जि. अहमदनगर-413710 (महाराष्ट्र)

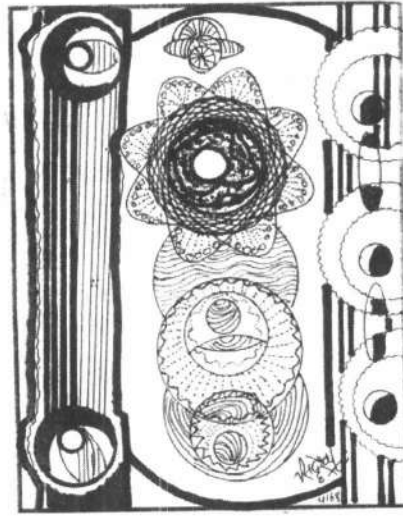
लाठी आमतौर पर बांस की वह लंबी लकड़ी होती है जो गांठों को छीलकर बनाई जाती है और टेकने, मारपीट करने, राजनीतिक आंदोलन का माध्यम बनने तथा मुहावरे के प्रयोग में काम आती है। लाठी जन्म से जंगली है परंतु कर्म से सभ्य कहलाने वाले मनुष्य के साथ रहती है। मनुष्य से श्रेष्ठ मानी जा सकती है क्योंकि एक तो उससे ऊंची होती है, दूसरे उसके आगे रहती है—चाहे कंधे पर चढ़ी बैठी हो या हाथ में हो, आगे या ऊपर झांकती रहेगी—ताकि इन्सान उसके अस्तित्व के प्रति सचेत रहे।

लाठी का आदिपूर्वज डंडा है जो कूद में छोटा होता है। यह मानव-सभ्यता के पूर्व की चीज है। आदिमानव डंडे की सहायता से कंद-मूल खोदकर भोजन जुटाता था। जब वह शिकारी बन गया तो उसने पत्थर के, और बहुत बाद में लोहे के, विभिन्न उपकरण लगा कर डंडे को कुल्हाड़ी का रूप दे दिया। जानवरों के अलावा दूसरों को मारने के लिए वह डंडे का सहारा लिया करता था। कृषि युग में डंडे से कुदाल और फावड़े बन गए। लाखों साल बाद डंडे का मूल रूप आज भी भारतीय पुलिस के पास सुरक्षित है। पुलिस अपना कर्तव्य-निर्वाह डंडे से ही करती है। यह डंडा उसे सरकार द्वारा भर्ती के समय यह कहकर दिया जाता है कि इससे समाज में कानून और व्यवस्था बनाए रखो। नेहरू जी को ऐतिहासिकता से बड़ा प्रेम था। इतिहास पर आधारित पुस्तकें भी लिखीं। इसी प्रेम के चलते वह अक्सर एक डंडा हाथ में रखते थे हालांकि प्रकृति से अहिंसावादी थे।

समाज में जब राजा का आविर्भाव हुआ तो राजा अपने पुराने दोस्त डंडे को नहीं भूला, क्योंकि इसी की बदौलत वह राजा बना था। राजा के साथ-साथ डंडे का भी उत्कर्ष हुआ। वह राजा का डंडा न कहलाकर 'राजदंड' कहलाया। संस्कृत में डंडे को 'दंड' कहते हैं। राजदंड राजा के न्याय का यानी सत्ता का प्रतीक हो गया। किसी अपराधी को सजा देना हो तो कर्मचारी उसे डंडे से मार-मार कर राजाज्ञा का पालन कराते। डंडा यानी दंड सजा का पर्याय हो गया। आगे चलकर प्रत्येक प्रकार की सजा को, चाहे वह आर्थिक जुर्माना हो, खेतों में

लाठी

सुधीर निगम



वेगार हो, हाथ-पैर काटने की सजा हो या फांसी की सजा हो, सबको 'दंड' कहा जाने लगा। लेकिन जब यह 'दंड' नीति से जुड़ गया तो 'दंडनीति' यानी राजनीति बन गया।

भैंस को कब्जे में करने के लिए या अक्ल के पीछे लेकर फिरने के लिए लाठी अस्तित्व में आई। लाठी ने सबसे पहले पशुधन (भैंस) को कब्जे में किया। एक लोक कथा है—एक बूढ़ा आदमी अपनी भैंस लिए पेंठ जा रहा था। उस समय तक लाठी और भैंस का साथ नहीं था अतः बूढ़े के पास लाठी नहीं थी। रास्ता सुनसान था। अचानक पता नहीं कहाँ से एक लाठीधारी आ गया। उसने बूढ़े पर लाठी तानकर कहा, “ऐ बूढ़े, यह भैंस मुझे दे दे नहीं तो इस लाठी से तेरा सिर फोड़ दूंगा।” बूढ़े ने डर कर अपनी भैंस उसे दे दी। लाठीधारी एक हाथ में लाठी और दूसरे हाथ में भैंस की पगही पकड़े अकड़कर चलने लगा।

बूढ़ा भी उसके पीछे-पीछे चलता चला जा रहा था। काफी दूर जाने के बाद उसने लाठीधारी से कहा, “भैया, मैं बूढ़ा आदमी, चलते-चलते थक गया हूँ। अपनी लाठी मुझे दे दो तो उसके सहारे चल लूंगा।” लाठीधारी ने अपनी लाठी बूढ़े को दे दी। थोड़ी देर बाद बूढ़ा लाठी तानकर गरजा, “ला मेरी भैंस इधर दे वरना तेरी खोपड़ी खोल दूंगा।” लाठीधारी ने भयाक्रांत होकर भैंस बूढ़े को दे दी। भैंस लेकर बूढ़े ने कहा, “अब चलता बन। इसी को कहते हैं, जिसकी लाठी उसकी भैंस।”

लाठी से पहले जानवर हांके जाते थे। हरेक चरवाहे के पास एक लाठी होती थी जिससे वह अपने रेवड़ के हर प्रकार के जानवर यानी गाय, भैंस, बकरी, भेंड़ हांका करता था। आदमियों के संदर्भ में यह मुहावरा बन गया यानी एक ही लाठी से सबको हांकना। हमारे देश में अंग्रेजी राज तक यह मुहावरा सटीक रहा। सरकार एक ही लाठी से आम सत्याग्रही को हांकती थी और उसी लाठी से लाला लाजपत राय जैसे नेता को भी। लाला जी लाठी की मार से शहीद हो गए। और कोई देश होता तो उस ऐतिहासिक लाठी को सुरक्षित रखता।

प्रजातंत्र में सरकार के पास लोगों को हांकने के लिए भिन्न-भिन्न लाठियां हो गईं। आम जनता के लिए अलग लाठी, सरकारी अमले के लिए अलग लाठी, पार्टीजनों के लिए भिन्न लाठी और सहयोगी दलों के लिए सर्वथा पृथक् लाठी। सरकार की लाठी ईश्वर की लाठी की तरह बेआवाज़ होती है परंतु ईश्वरीय लाठी के विपरीत यह न्याय का दंभ नहीं करती वरन् विरोधी के घड़े को भरने से पहले ही फोड़ देती है फिर उसमें चाहे पाप हो या न हो।

ज़मींदारों के काल में लाठी खूब फली-फूली। ज़मींदार के सुरक्षाकर्मी लठैत हुआ करते थे। लाठी चलाने की कला में निष्णात व्यक्ति को लठैत कहते हैं। एक लठैत आठ-दस नौसिखिया लाठीधारियों को लठिया सकता था यानी लाठी मार कर परास्त कर सकता था। लगान वसूलने, दूसरे की भूमि पर कब्ज़ा करने, दुश्मनी निकालने, अपहरण करने, ग़रीबों को बेघर करने जैसे सारे काम ज़मींदार के लिए लाठी के बल पर लठैत करते थे। शांतिकाल में

लठैत अपनी लाठियों को तेल पिलाया करते थे। उसी काल में लाठी चालन एक कला के रूप में विकसित हुआ। मेलों और त्यौहारों आदि में इस कला का प्रदर्शन किया जाता था। दक्षिण में पर्वों पर लाठीकला का प्रदर्शन आज भी होता है।

लाठी का बड़ा भाई लट्ठ होता है। वैसे तो ज़मीन नापने के काम आने वाला बांस का साढ़े पांच हाथ का टुकड़ा लट्ठ कहलाता है। 'लट्ठ' में कटुता, धृष्टता और अनम्यता का भाव निहित होता है। इसी कारण कटु बोली को 'लट्ठमार बोली' और धृष्टतापूर्वक लाठी बरसाते हुए खेती जाने वाली मथुरा की होली को 'लट्ठमार होली' कहते हैं। अनम्यता के भाव के कारण अपेक्षाकृत कड़े कपड़े को भी 'लट्ठा' कहा जाता है।

लाठी की छोटी बहन को लठिया कहते हैं। स्त्रीलिंग होने के कारण यह अहिंसा का प्रतीक होती है। ज्यादातर धर्माचार्य, साधुजन, संत महात्मा इसे लेकर चले और चारों ओर धर्म का प्रचार किया। वर्तमान में अहिंसा के सबसे बड़े पुजारी महात्मा गांधी सदैव अपने साथ एक

समाज में जब राजा का आविर्भाव हुआ तो राजा अपने पुराने दोस्त डंडे को नहीं भूला, क्योंकि इसी की बदौलत वह राजा बना था। राजा के साथ-साथ डंडे का भी उत्कर्ष हुआ। वह राजा का डंडा न कहलाकर 'राजदंड' कहलाया।

लठिया रखते थे।

गिरधर कवि ने लाठी की बहुत प्रशंसा की है। अपनी एक प्रसिद्ध कुंडलिया में लाठी के गुण बताते हुए कहते हैं कि यह नदी-नाला पार करते समय काम आती है, क्योंकि इससे पता चलता है कि पानी कहां कितना गहरा है, कुत्ता काटने दौड़े तो उस पर बरस पड़ती है, सामने आए शत्रु का नाश करती है और कच्चे मार्ग पर चलने वाले की पथ-प्रदर्शक बन जाती है। इस कुंडलिया में उन्होंने लाठी को हथियार

की श्रेणी में रखते हुए कहा है, "सब हथियारन छाड़ि हाथ में लीजै लाठी।" अंग्रेजों ने गिरधर को ठीक से समझा और लाठी रूपी हथियार देशी पुलिस को पकड़ा दिया ताकि वे सत्याग्रह करने वालों की आवाज़ को दबा सकें। अंग्रेजों के यहां लाठी नाम की चीज नहीं होती अतः वे भी इसे 'लाठी' ही कहने लगे। जनता पर लाठी चलाने के लिए आदेश रूप में 'लाठी-चार्ज' कहा जाता था। 'चार्ज' युद्ध में प्रयुक्त होने वाला शब्द है। दुश्मन पर गोली बरसाना प्रारंभ करने के लिए 'चार्ज' कहा जाता है।

लाठी में तेज़ धार वाले उपकरण लगाकर बल्लम, भाले, फरसे आदि बनाए जाते हैं। इनकी संगत में आकर लाठी पूर्ण रूप से हिंसक हो उठती है। इस दुष्प्रभाव के संतुलन के लिए उसने अपने अहिंसक भाव भी समाज में छोड़ रखे हैं। अंधे की और अपाहिजों की लाठी बनकर यह उनका सहारा बनती है तो पुत्र के रूप में पिता के बुढ़ापे की लाठी बन जाती है। □

संपर्क : 104-ए/315, रामबाग, कानपुर-208012

पत्र

पृष्ठ 5 से आगे

आवरण पृष्ठों पर प्रकाशित कविताएं रहस्यमयी हैं। यह संबंधित कवि के रहस्य का ही कोई तजुर्बा हो सकता है फिर भी 'जीवन' कविता ने मन-मोहा। पृष्ठ 33 पर प्रकाशित चित्र भी, किसी चित्रकार के द्वारा उकेरे केनवास के चित्रों का प्रतीत हुआ। मानो यह छायाचित्र रंगकर्मियों को चिढ़ा रहा हो।

कला-इतिहास में दिनेश चंद्र अग्रवाल का लेख बेहद पसंद आया। कई बार अध्ययन किया उल्लेखित तीनों चित्रों को 'आजकल' के माध्यम से देखकर आंखों में नया आनंद समा गया।

कलाकार अपने सृजन हेतु क्या कुछ कर गुज़रता है। सात समंदर पार से आकर ब्रिटिश चित्तेरों ने हिंदुस्तान को अमूल्य धरोहरों से नवाज़ा है। इनके संरक्षण हेतु विभिन्न संग्रहालयों को हार्दिक साधुवाद की जो 500 सालों से कलाकारों की भावनाओं को कद्रदानी

हेतु संजोया हुआ है।

दिनेश अग्रवाल ने यह लेख बेहद सुरुचिपूर्ण ढंग से उकेरा है। यह लेख 'आजकल' के अक्टूबर अंक की नींव है। आधार है।

—विष्णु कुमार डोढा, सावरिया, कोटा
(राजस्थान)

संग्रहणीय अंक

● अक्टूबर अंक विविधताओं से भरा एवं संग्रहणीय है। सुभाष चंद्र कुशवाहा द्वारा 'चौरी चौरा विद्रोह' का विश्लेषण एवं दिनेश चंद्र अग्रवाल का लेख 'ब्रिटिश चित्तेरों की नज़र में हिंदुस्तान' काफी ज्ञानवर्द्धक है। पल्लवी प्रकाश की कविता 'बोलती हुई स्त्री' काफी अच्छी लगी। संगीतकार जोड़ी हुस्नलाल-भगताराम पर रविराज पटेल का लेख संगीतकार द्वय के बारे में काफी जानकारी दे गया। संगीतकार शंकर-जयकिशन के सहायक और स्वयं में एक अच्छे संगीत-निर्देशक दत्ताराम ने भी लक्ष्मीकांत-प्यारेलाल के आर्केस्ट्रा ग्रुप में फिल्म 'बॉबी' के लिए वादक का काम किया था।

राजकपूर ने पुराने संबंधों के आधार पर उन्हें फिल्म में म्यूज़िक सुपरवाइज़र का पद दिया था लेकिन इस फिल्म के बाद वे काम बंद करके गोवा चले गए। जहां तक मुझे स्मरण है, गुणी संगीतकार सी. रामचंद्र ने भी अपने कैरियर के अंतिम दिनों में लक्ष्मी-प्यारे के साथ एक फिल्म 'छैला बाबू' (पुरानी) में कुछ काम किया था।

इस अंक में प्रकाशित आरती स्मित की कहानी 'कागज़ का टुकड़ा' हवा के ताज़े झोंके की तरह आकर सहला गई। इस कहानी में लेखिका ने बाल-मनोविज्ञान का काफी सूक्ष्म और वास्तविक चित्रण किया है। आज की अधिकांश कहानियां स्त्री-पुरुष संबंधों पर आधारित होती हैं जो सिर्फ 'एलिट क्लास' के लिए लिखी जाती हैं। आम आदमी ऐसी कहानियों में हाशिए पर है। 'आजकल' ने कहानियों के चुनाव में अपना स्तर बनाकर रखा है, यह सराहनीय है।

—अनिल कुमार चौधरी, मुज़फ़्फ़रपुर (बिहार)

कहानी

देवांशु वत्स

वह चाहता था कि कहानी हर तरह से बेहतरीन हो। कम-से-कम उसमें भरपूर संवेदनशीलता तो हो ही। विचारों की गहराइयों में वह गोते लगा रहा था। पर कोई भी आइडिया उसे जंच नहीं रहा था। ओह! दस बज गए !! उसने बुदबुदाते हुए पंखे की स्पीड बढ़ा दी। शायद कोई घटना ही याद आ जाए। जीवन में हर वक्त तो घटनाएं घटती ही रहती हैं।

वह विचारों में खोया था। तभी छोटी बहन ने आकर कहा— 'भइया, मेरा पंखा नहीं चल रहा है...।'

'अभी जाओ, सुबह में देख लूंगा।' —उसने सिर झुकाए ही कह दिया। छोटी चली गई। उसने डायरी बंद कर दी और बिस्तर पर पसर गया।

'भइया, ज़रा पंखा देख लो न !' —छोटी फिर बोल रही थी।

'कल देखूंगा। कहा न!!' —छोटी चली गई। वह सोचता रहा। अच्छा कल दिनभर का समय है। कोई-न-कोई कहानी मिल ही जाएगी।

मच्छर ने ऐसा काटा कि उसकी नींद खुल गई। 'ऑल आऊट' काम नहीं कर रहा था और पंखा रुका हुआ था। उफ़! बिजली का भी कोई ठिकाना नहीं है। वह कमरे से बाहर निकल गया। बाहर अच्छी हवा चल रही थी। चांद डूबने वाला था। तभी उसे कुछ याद आया। छोटी का पंखा देख लेता हूँ। वह छोटी के कमरे में था। तभी बिजली आ गई। नाइट बल्ब की रोशनी से कमरा नहा उठा। छोटी बेसुध पड़ी थी। उसके गाल पर दो दाने उभरे थे। मच्छरों ने काटा था। उसने आहिस्ते से बिस्तर पर कुर्सी रखी और चढ़कर पंखे को देखने लगा। एक तार छूटा हुआ था। उसने तार फंसा दिया। पंखा चलने लगा।

'सिर्फ एक तार फंसाना था!' —वह सोचते हुए अपने कमरे में चला गया।

उसकी आंखें खुलीं। छोटी चाय लिए खड़ी थी। 'भैया, तुमने कब पंखा ठीक कर दिया?' —छोटी ने चहकते हुए कहा। उसके चेहरे पर मच्छर के काटने के दाग अब भी थे।

अभी वह कहानी के बारे में नहीं सोच रहा है। छोटी के चेहरे पर कहानी जो लिखी है!!

पहचान

मैं उसे देखते ही पहचान गया। वही नाक-नक्श, वही शक्ल-सूरत। आखिर पहचानता भी कैसे नहीं, बचपन की पढ़ाई हमने साथ की थी। मैट्रिक्यूलेशन के बाद वह कहीं और चला गया और मैं उसी छात्रावास में रह गया।

'अरे, राकेश! कैसा है यार?' मैंने उसके कंधे पर हाथ रखते हुए

पूछा। उसने मुझे भौंचक होकर देखा, 'सॉरी, मैंने आपको पहचाना नहीं!'

'अरे यार, मैं रमेश, तुम्हारे साथ था हॉस्टल में!!' आश्चर्य मुझे भी हो रहा था।

'माफ़ कीजिए भाई साहब। मुझे कुछ याद नहीं आ रहा।' —उसने अनमने भाव से कहा।

'कमाल है यार, मुझे, अपने सहपाठी को नहीं पहचान रहा है। खैर छोड़। अब तक मुंगेर में था। इधर पंद्रह दिन पहले इसी शहर में पोस्टिंग हो गई है। कलेक्ट्रेट में कार्यरत हूँ। खैर, चलता हूँ.....'

'अरे, तू यार रमेश!! हां...हां...याद आया। कितना बदल गया है तू। पहचान में ही नहीं आ रहा। इधर छह-सात दिनों से तुम्हारे ऑफिस के ही चक्कर लगा रहा हूँ !!' उसने मुझे गले लगाते हुए कहा।

उसके हिस्से की धूप

एक हल्की-सी हवा क्या चली, मालिक का पूरा शरीर सूखे पत्ते की तरह कांप गया। मालिक अपने लबादे में थोड़ा और सिमट गए। इस कड़ाके की सर्दी में हल्की-सी धूप तो थी पर ज़रा-सी हवा चलती तो बदन थर्रा जाता। मालिक ने ठंड से लड़ने के लिए नए तरीके से मोर्चा संभाला और उकड़ूँ होकर बैठ गए।

इधर-उधर मुआयना करते-करते अचानक मालिक की नज़र कलुआ पर पड़ी। वह घास पर इस तरह लेटा धूप खा रहा था जैसे समंदर के बीच पर लेट कर विदेशी सैलानी धूप-स्नान करते हैं। स्साला कैसे धूप खा रहा है, जबकि कुछ पहना भी नहीं है! मालिक जल-भुनकर राख हो गए! उन्होंने इधर-उधर नज़र दौड़ाई। कोई काम बचा तो नहीं। पर कलुआ सारा काम कर चुका था और निश्चिंत होकर धूप सेंक रहा था। गाय को चारा, झाड़ू-बुहाड़ू, साफ-सफाई, सांझ को अलाव जलाने के लिए लकड़ियां और पत्ते आदि का इंतज़ाम सहित सारे कामों को वह निबटा चुका था। मालिक ने अपनी आंखें बंद कर दिमाग पर जोर लगाया, फिर आंखें खोलते हुए कलुआ से कहा—'रे कलुआ, मेरे कमरे को अच्छी तरह से पानी से धोकर पोछा लगा दे और बरामदे को भी साफ़ कर लेना। सुबह कुत्ता चला गया था।'

'जी मालिक।' —कलुआ ने कहा और बाल्टी लेकर चापाकल के पास चला गया। मालिक ने पोज़िशन बदलते हुए मुंह सूरज की ओर किया और लबादे को शरीर से थोड़ा और चिपका लिया। □

संपर्क : द्वारा श्री नंदलाल, 126-ई, तीसरा तल्ला, किलोकरी (महारानी बाग के सामने), नई दिल्ली-110014

कथक की रायगढ़ शैली

पं. कार्तिकराम के पुत्र पं. रामलाल की कथकयात्रा चक्रधर दरबार से शुरू हुई। पं. रामलाल ही आज के कलाकार हैं जिनके तार सीधे रायगढ़ दरबार से जुड़े हैं। प्रस्तुत है उनके साथ चित्रा शर्मा की बातचीत—



इसी मेले में लोकनृत्य प्रदर्शित करते कलाकारों की कला से प्रभावित होकर उन्हें अपने दरबार में संरक्षण दिया और कथक के विद्वान गुरु पं. अच्छन महाराज (लखनऊ घराना) व पं. जयलाल महाराज (जयपुर घराना) ने उनकी कथक की शिक्षा का जिम्मा लिया। राजा की इस सोच से लोक कलाकार पूरे भारत में कथक नर्तकों के रूप में पहचाने जाने लगे तथा लखनऊ, जयपुर व बनारस घरानों से अलग कथक की रायगढ़ शैली आकार लेने लगी।

पं. कार्तिकराम, कल्याणदास, फिरतू महाराज व बर्मन लाल रायगढ़ कथक के प्रमुख ध्वजवाहक रहे। पं. कार्तिकराम के पुत्र पं. रामलाल की कथकयात्रा चक्रधर दरबार से ही शुरू हुई। पं. रामलाल ही आज के कलाकार हैं जिनके तार सीधे रायगढ़ दरबार से जुड़े हैं। उनके साथ विशेष बातचीत में उन्होंने सिर्फ रायगढ़ कथक के सौंदर्य को ही नहीं बताया बल्कि इसमें एक समर्पित कलाकार व गुरु की जीवन यात्रा भी है और कला भी। अपने पाठकों और शिष्यों के लिए गुरु रामलाल ने कथक के अनछुए इतिहास को आलोकित किया—

प्रश्न : राजा चक्रधर सिंह के साथ आपकी क्या स्मृतियां हैं ?

उत्तर : मेरे पिताजी पं. कार्तिकराम राजा चक्रधर सिंह के दरबार में नर्तक थे। उनके संरक्षण में ही वे लोकनर्तक से कथक नर्तक के रूप में उभर कर आए। पिताजी बचपन में मुझे दरबार ले जाते थे। मैंने तब कथक सीखना तो शुरू कर ही दिया था। वहां विद्वान गायक उनकी लिखी बंदिशें गाते, कभी नर्तक उनकी रचित परन करते, तब मैं बैठा-बैठा उनकी कलाविद्वता को देखता था। एक दिन मुझ पर नज़र पड़ने से चक्रधर महाराज ने मेरे नृत्य को देखा और मेरी शिक्षा अपने संरक्षण में ही कराने का निर्णय लिया। पिताजी के गुरु पं. जयलाल महाराज को विशेष रूप से पुनः बुलाकर मेरी कथक की शिक्षा शुरू हुई तथा साथ ही गायन और वादन की भी शिक्षा मिलती गई। सुबह पांच बजे मैं दरबार पहुंचता था। वहां राजा स्वयं तबला लेकर रियाज़ कराने को बैठे होते थे। सबसे पहले बोल स्वयं उन्होंने मुझे दिए। उनका कलाकारों के प्रति अगाध प्रेम और सम्मान था।

पं. कार्तिकराम, कल्याणदास, फिरतू महाराज व बर्मनलाल जी मुख्य रायगढ़ कथक के प्रमुख ध्वजवाहक हुए। इनकी लोकनर्तक से शास्त्रीय नर्तक होने की यात्रा कैसी रही?

प्रकृति की प्रत्येक क्रिया में समाई स्वाभाविक लय और ताल ने मनुष्य को संगीत व नृत्य के लिए प्रेरित किया। हवा में झूमते, लहलहाते वृक्ष और उस पर पत्तों का संगीत, बहते हुए झरने की ध्वनि, पक्षियों की आवाज़ें आदि अनेक सांगीतिक प्रेरणाएं आदिम मनुष्य के समक्ष रहीं। इसने इनको पहचानना शुरू किया और उनके सामान्य जीवन में संगीत का प्रवेश होना शुरू हो गया। बाद में प्राकृतिक आपदाएं, उनका भय, बचने के लिए ईश्वर की शरण और आराधना का माध्यम संगीत व नृत्य बनता गया और धार्मिक स्थलों पर संगीत पहुंचने से इनको विशिष्टता मिलती गई। प्रकृति की इसी भाषा को राजा चक्रधर सिंह ने न केवल कलात्मक ढंग से समझा बल्कि शब्द, लय, ताल में बांधकर आकार दिया।

छत्तीसगढ़ की रायगढ़ विरासत के राजा चक्रधर सिंह को संगीत विरासत में मिला। उनके पिता राजा भूपदेव सिंह ने चक्रधर सिंह के जन्मदिन के उत्सव को गणेशचतुर्थी के समय एक माह तक चलने वाले मेले के आयोजन के रूप में मनाने की परंपरा शुरू की। इस मेले में कलाकारों, साहित्यकारों के अलावा पहलवानों की कुश्तियां व अन्य प्रदर्शनकारी कलाओं, सभी को प्रदर्शित करने की स्वतंत्रता थी। यहां से राजा चक्रधर सिंह ने नृत्य, संगीत की बारीकियों को देखा, सुना और सीखा।

मेरे पिताजी पं. कार्तिकराम तो खासतौर पर छत्तीसगढ़ के लोकनृत्य गम्मत के बहुत अच्छे कलाकार थे। यही उनका जीवनयापन का जरिया भी था, उस ज़माने में रायगढ़ में प्रदर्शन करना बड़े सम्मान का विषय होता था। गणेश उत्सव में पिताजी के प्रदर्शन के दौरान राजा साहब ने इनको देखा और अपने दरबार में ले आए। कथक के विद्वान् गुरु पं. अच्छन महाराज व जयलाल महाराज ने अपने सान्निध्य में कठोर परिश्रम करवाया और कथक में पारंगत किया। इनका अभ्यास और राजा की सोच के संयोग से लोक नर्तक देश के नामी कथक कलाकार बने।

जयपुर और लखनऊ घराने के वरिष्ठ गुरुओं से राजा ने स्वयं भी कथक की बारीकियां सीखीं और अपने संरक्षण में छत्तीसगढ़ के कलाकारों को कथक से परिचित कराया। कृपया बताएं कि राजा की किस सोच ने कथक के रायगढ़ घराने की नींव डाली?

मुख्य बात तो यह है कि राजा स्वयं तबले व पखावज में पारंगत थे, अब चूँकि पुराने कथक में तीव्र लय में रियाज़ करना और बड़े-बड़े तोड़े करना, यहां तक कि 52 मात्रा की तालों पर नृत्य करना भी शामिल रहा, अतः ये कलाकार कठोर अभ्यास करते थे, जिससे ताल लय पर पकड़ बनी रहे। इसे देखकर ही राजा को यह तथ्य समझ में आया कि लय बहुत द्रुत है। यह नृत्य मशीनी लगेगा; इसमें हृदयगत भावों का अभिनय नहीं है।

उनके शब्दों में नृत्य का अर्थ यदि अंग विक्षेप ही रहे तो वह अपना महत्त्व खो बैठेगा, तब उन्होंने नाच में लय को विलंबित से धीरे-धीरे बढ़ाकर द्रुत तक जाने का रास्ता बनाया, जैसे सितार में झाला धीरे-धीरे गति पकड़ता है उसी तरह विलंबित लय में उन्होंने परनों की रचना की और रायगढ़ कथक की नींव पड़ती गई।

पहले के विद्वान गुरु अपने सिद्धांतों पर अडिग थे फिर राजा साहब ने किस तरह अपने रचित बोल, परन को इन गुरुओं के समक्ष रखा और गुरुओं ने इसे मान्य किया?

राजा साहब स्वयं कलाकार थे और कथक की भी शिक्षा पूरे लगन और उत्साह से ले रहे थे। पहले उन्होंने गुरुओं से बोलों को सीखा, समझा और फिर खुद उन्होंने तोड़े, परन की रचना की और गुरुओं से कहा कि मैं आपको ही ये बोल ब्याज के साथ जोड़ा परन वापस कर रहा हूँ, विशेष बात ये कि उन्होंने अर्थ या भाव विशेष को ध्यान में रखते हुए परनों की रचना की।

रायगढ़ कथक की संरचना में परन रचना के अलावा और कौन-कौन से कलातत्व सहायक रहे?

रायगढ़ दरबार में गायन, वादन और नृत्य के महारथी तो थे ही, साथ ही चिंतामणि और भूषण जैसे अच्छे कवि, चित्रकार और संयोजक भी दरबार में रहा करते थे। इन लोगों ने राजा द्वारा रचित परनों को लिखा भी और चित्रांकित भी किया। अतः यहां के बोल ध्वन्यात्मक और चित्रात्मक बन गए। मात्र वे निरर्थक बोल नहीं रहे वरन उतनी स्पष्टता और निखार के साथ किसी विशेष अर्थ को प्रेरित करते हैं। जैसे राजा

द्वारा रचित एक किलकिला परन है—

देंत तेटे धेधे किट तड़ाग
तक-तक धेधे धेधे धेधे घुम्मक
धागे दिगन धागे दिगन घेतिहत गदिगन
त्रकत तान, त्रकत तान, धरन मीन घेत धड़नधा
ता धा दिन दिन किडकट दिडंग धा
तितकट गदिगन धा ता धा, गदिगन धा गदिगन धा

इसमें पहली पंक्ति में तालाब का फैलाव, दूसरी में किलकिला पक्षी द्वारा जल को बार-बार ताकने, तीसरी में ऊपर-नीचे होकर लक्ष्य साधने, चौथी-पांचवीं में मछली को पकड़ने, फिर छठवें और सातवें चरणों में पंख फड़फड़ाकर पानी से ऊपर उठकर आनंद में गदगद नीड़ की ओर उड़ने का चित्रण है। इस तरह गज परन, पक्षी परन, दलबादल परन जैसे अनेक परनों की उन्होंने रचना की।

इसके अलावा उन्होंने अष्टनायिकाओं पर केंद्रित रचना और नवरत्नों को नृत्य में मूर्त किया।

‘चक्रपिया’ के नाम से हिंदी में तथा उर्दू में फ़रहत के नाम से राजा साहब ने रचनाएं कीं जिन्हें हम लोग करते आए और अपने शिष्यों को आज भी शिक्षा दे रहे हैं।

इस प्रकार उनकी सभी रचनाएं साहित्य में संरक्षित होने के कारण रायगढ़ कथक को समृद्ध करती हैं।

आपने जयपुर घराने के गुरु पं. जयलाल जी से कथक की शिक्षा ली तथा राजा चक्रधर ने भी अपनी रचित परनों को बताया और आपको अपने अंग संचालन में कोई विशेष फर्क नजर आया?

देखिए, रायगढ़ कथक में दोनों कथक घरानों के गुरुओं की तालीम है, परंतु जब हम रायगढ़ बोलों को करते हैं तो अपने-आप ही हस्तकों और भावों में अंतर आ जाता है क्योंकि इस परनों के विशेष भाव हैं। दूसरा उसको करने वाले नर्तक मूल लोक नर्तक रहे तो उनके शरीर का लचीलापन और सौंदर्य अपने-आप ही अंगसंचालन में आता गया।

तो क्या रायगढ़ के कथक में लोक प्रभाव है?

देखिए हर इंसान प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप में लोक से जुड़ा है, ये प्राकृतिक तथ्य है। इसी समझ से ही राजा चक्रधर सिंह ने जो रचनाएं कीं जैसे दलबादल परन, बिजली परन, पक्षी परन वास्तव में ये सब इसी लोक से जुड़ाव के ही सृजन हैं और एक बात यह कि हर व्यक्ति की देह की अपनी भाषा होती है।

रायगढ़ कथक के मुख्य नर्तक कार्तिकरामजी, कल्याण दास, फिरतू महाराज व बर्मनलाल ये सभी लोक नर्तक ही थे। उनकी मूल देह भाषा लोक की होने से लोकनृत्य का लचीलापन और सौंदर्य रायगढ़ कथक को अलग जगह देने का सशक्त कारण रहा।

आपकी दृष्टि में लोकनृत्य का कथक से कोई अंतरसंबंध

बनता है?

छत्तीसगढ़ के लोकनृत्य गम्मत, कर्मा सपर्दा नृत्य में 'थेई-थेई' कई बार आता है। उसका पदसंचालन कथक विकास में होने वाले पद-संचालन के करीब है, कथक की आमद है। थेई ता थेई, ता थेई, थेई थेई तत त्राम ता।

गम्मत नृत्य में चक्करों का बड़ा ही खूबसूरती से उपयोग है। कहीं कथक में भ्रमरी या चक्कर लेना कथक की मुख्य विशेषता है। कथक की प्रस्तुति में हम लयों के साथ खेलते हैं। विलंबित से शुरू कर बराबर की लय फिर द्रुत या ऊपर की लय पर तबले के साथ जुगलबंदी करते हैं। अब देखिए, गम्मत में चौड़े मुख का तबला वजता है और अद्धा, डग्गा और चलती की लय लेकर पैरों और चक्करों के साथ नृत्य चलता है। कहीं भजन, कहीं ऋतुओं के गीत तो कहीं बारहमासा पर भावों को प्रकट किया जाता है, ये मेरा सोचना है कि चक्रधर सिंह ने भी जब गम्मत के चक्कर और पदसंचालन को देखा तो उन्हें कथक की झलक दिखाई दी और रायगढ़ घराने के कार्तिक-कल्याण की जोड़ी ने कथक की धूम पूरे देश में मचाई।

रायगढ़ घराने में ऐसा क्या विशिष्ट है, जो उसे अन्य घरानों से अलग करता है?

'कला को कला रहना चाहिए, शास्त्रीय विज्ञान नहीं'—राजा चक्रधर की इसी सोच की वजह से उनकी रचनाएं व्याकरण की दृष्टि के साथ-साथ भावनात्मक दृष्टि से भी अपने को विशिष्ट करती हैं, विविध वर्ण का उच्चारण अथवा ध्वनि से शरीर के विभिन्न अंगों पर प्रभाव पड़ता है। उन्होंने अपनी रचनाओं में ऐसे वर्णों का उपयोग किया। रायगढ़ कथक के बोलों की ध्वनि अर्थ को स्पष्ट करती है। इसमें भावों की प्रधानता है। जैसे दूसरे घरानों में कहा जाता है; परन, तोड़े, टुकड़े करते हैं पर रायगढ़ कथक में दलबादल परन, बिजली परन आदि नामों से बोलों की पहचान है। अर्थ एवं भाव प्रधान होने से हस्तकों और अंगों से प्रदर्शन का भी अंदाज़ रायगढ़ कथक का अपना है। एक मुख्य बात यह है कि इसके बोल साहित्य के रूप में संरक्षित हैं।

आप रायगढ़ कथक के भविष्य को कैसा देखते हैं?

राजा साहब की अचानक मृत्यु के बाद हमारे गुरुजन रायगढ़ से बाहर आ गए। मध्य प्रदेश सरकार ने भोपाल में चक्रधर कथक केंद्र की स्थापना की और मेरे पिताजी पं. कार्तिकराम ने रायगढ़ कथक परंपरा के कई शिष्यों को तैयार किया। उनकी मृत्यु के बाद मैंने शिष्यों को आप सबको सौंपा। अब यह इस धरोहर को कितना संभालेंगे, यह शिष्यों पर निर्भर करता है।

उम्मीद है कि रायगढ़ घराने के नए शिष्य अपने गुरुओं को नाउम्मीद नहीं करेंगे और रायगढ़ घराने के कथक को भविष्य में और आगे ले जाएंगे। □

संपर्क : एच-45, II रेजीडेंसी ग्रीन्स, सेक्टर-46, गुडगांव (हरियाणा)

हमारे नए प्रकाशन



कैदारनाथ मिश्र 'प्रभात'

ले. नंदकिशोर नंदन, (पेपरबैक),
पृ. 172, मूल्य : 120 रुपये
ISBN : 978-81-230-1890-4



उपेन्द्रनाथ अशक : जीवन और सृजन

ले. से. रा. यात्री, (पेपरबैक)
पृ. 279, मूल्य : 160 रुपये
ISBN : 978-81-230-1837-9



पर्यावरण संरक्षण चुनौतियां और समाधान

ले. पी.एस. गोपीनाथन नायर, (पेपर बैक),
पृ. 291, मूल्य : 200 रुपये
ISBN : 978-81-230-1864-5



Natty Friends & Other Stories

Author : Anita Chanda, Deepak Chanda
(Paperback), Page : 83, Price : Rs. 90
ISBN : 978-81-230-1852-2

पुनर्मुद्रण



ग्रह नक्षत्रों की आत्मकथाएं

ले. उषा पुरी विद्यावाचस्पति, (पेपर बैक),
पृ. 72, मूल्य : 70 रुपये
ISBN : 978-81-230-1867-6



रज़िया सुल्तान

ले. रश्मि स्वरूप जौहरी, (पेपरबैक)
पृ. 34, मूल्य : 70 रुपये
ISBN : 978-81-230-1891-1



शमशेर बहादुर सिंह

संकलन, (पेपर बैक),
पृ. 139, मूल्य : 95 रुपये
ISBN : 978-81-230-1796-9

छह गीत : यशवंत वीरोदय

एक

दिल में दर्द है, आंखों से सजल लिखता हूं
सामने दुनिया है, इसलिए ग़ज़ल लिखता हूं॥

हर शख्स के चेहरे पर नकाब, हर दरवाजे पर
पर्दा आज!
तहों को खोल न पाया हिजाब लिखता हूं॥

जानता मैं हूं इन सबके पके बालों का राज
असलियत छिप गई है तो ख़िज़ाब लिखता
हूं॥

पढ़ा था वर्क में जन्नत, मिली कुछ दूसरी ज़मीं
है
पक कर रिस रही है तो मैं घाय लिखता हूं॥

ये रफ़्तारे दुनिया है, वक़्त मिलने का नहीं देती
सिमटकर बह गया हूं तो बहाव लिखता हूं॥

दो

तन्हा-तन्हा तिनका-तिनका जी रहा है आदमी
क्या बताएं क्या समझकर जी रहा है आदमी॥

गर्विशों के दौर में, अपना-पराया कुछ नहीं
अब कलेजा फट गया है, सी रहा है आदमी॥

रजिशों के इस भंवर में, मैं किसे अपना कहूं
नज़रें खंजर हो गई हैं, चीरता है आदमी॥

दिल की बस्ती लुट चुकी, वीरानियों के दौर में
दर्द दरिया हो गया है, बह गया है आदमी॥

अब तो लाशें टंग रही, जमहूरियत के नाम पर
अहसास बंजर हो गए हैं, मर गया है आदमी॥

तीन

शाम आती रही, शाम जाती रही।
दिल की महफ़िल भी गुलशन सजाती रही।

फिर भी तन्हा रहा, ज़िंदगी का सफ़र।
जुस्तजू हर कदम पर सताती रही॥

हम हरे हुए हैं, उसी मोड़ पर।
उनकी नज़रें भी हमको बुलाती रहीं॥

पलके उठती रहीं, पलकें गिरती रहीं।
दिल की थड़कन, ये सांसें सुनाती रहीं॥

आज ग़ज़लों की महफ़िल सजी इस तरह।
शब्द मेरे थे, वो गुनगुनाती रही॥

चार

तुम नहीं हो तो लगता है बेवतन की तरह।
आ के मिल जाओ महकते हुए चमन की
तरह॥

एक मुद्दत से जिसे खोज रहा था मैं तो।
वही मिला मुझे उजड़े हुए अमन की तरह॥

अब वो गुलशन न रहा, अब और माहताब नहीं
चांदनी डूब गई, खोए हुए रतन की तरह॥

जुस्तजू ने मुझे दिवाना बना डाला है
आ के मिल जाओ रुठे हुए सजन की तरह॥

इंतज़ार हो न सका मुझसे, मैं भी जाता हूं
लाश मेरी है ये ओढ़े हुए कफ़न की तरह॥

पांच

आज क्या बात है, मेरे कस-ए-दिल में राहत
है।
अपनों की नहीं, नामहरमों की चाहत है॥

जवान मैं हूं, सामने, पर्दा-ए-क़यामत है।
खुदा का शुक्र है, निगाह सलामत है॥

आईना देखकर हंसना ये अपनी हालत है।
अक्स रकीब है, या दिल की हारत है॥

रंगी-अंजुम व माहताब मेरी चाहत है।
इन्हीं को तोड़ना ये किसकी शारत है॥

तावे बयां नहीं, मेरी इस नफ़रत का।
नफ़्स रकीब है, अपने से अदावत है॥

छह

समय के साथ चलता हूं, शराफ़त छूट जाती है
ये दुनिया ठूठ है ऐसी, नज़ाकत रूठ जाती है॥

कोई हमदम नहीं निकला, यहां मतलबपरस्ती
है।
मसलेहत से भरी बातें, दिलों को तोड़ जाती
हैं॥

ये इफ़शा-ए-राज़ है, इस जहां की हमदर्दी के
कि जिससे प्यार करती है उसी को लूट जाती
है॥

जो दरिया पार जाना है, तो कश्ती खुद-ब-खुद
चुन लो।
भंवर ये जलती दुनिया है, यही मझधार करती
है॥

अपना-अपना घर

शकुन्तला कालरा

उग्र का उत्तगर्द्ध। हर संबंध बर्फ की तरह सर्द। ऊष्वता का कोई स्पर्श किसी ओर से नहीं। टूटते-टूटते सब बिखरने के कंगार पर पहुंच गया। घर के नाम पर एक आलीशान मकान था जिसमें सब ऐसे रहते जैसे होटल में सहयात्री हों। एक-दूसरे के सुख-दुःख से बेखबर। पिता-पुत्र का संबंध एक मुहाने पर खड़ा था। दोनों में 36 के आंकड़े का संबंध। उग्र के साथ निरंतर बढ़ती खाई को वर्षों से पाटती आई शिल्पा खुद कभी-कभी असंतुलित मानसिक दशा में पहुंच जाती थी। घर में तीन पात्र तीन दिशाएं। छोटे बेटे अरुण ने भी अब घर छोड़ने का फैसला कर लिया था।

अब मकान का बिकना तय था। डीलर से एक बार कहा था सो वह रोज चक्कर लगा जाता। घर के टूटने का दर्द किसी के नहीं था क्योंकि वह एक मकान था जो सबके सिर पर एक सांझी छत की तरह था। सर्दी-गर्मी में अपने शरीर एक में ठंडापन लिए हुए था क्योंकि अंदर की ठंडक धीरे-धीरे पूरे घर में फैलती जा रही थी। एक-दूसरे के प्रति बेरुखी की सीलन से हर दीवार जिसकी काली पड़ गई थी। शिल्पा के जुड़ाव के सारे प्रयास विफल हो गए थे। पुत्र की ओर से भी वही ठंडापन। पुत्र-पिता के बीच के शीत-युद्ध में क्षत-विक्षत होती शिल्पा अब थकने लगी थी। पति शेखर के हृदय में वह कभी अपना कोना नहीं ढूँढ पाई थी। हमेशा ही कटे-कटे रहते। घर में कम और बाहर ज्यादा रहते। संवाद कम तकरार ज्यादा होता।

“मां तुम मेरे साथ चलो मेरे घर में। अब और मैं यहां नरक में नहीं रह सकता।” अपना फैसला खुद ही लेते हुए अरुण ने कहा—बड़ा बेटा पहले ही घर छोड़कर जा चुका था और उसे भी मकान में अपना हिस्सा चाहिए था। आज वह भी वहीं था और अरुण की बात सुनकर उसने कहा—

“नहीं मां मेरे साथ मेरे घर में रहेगी। अस्थमा के अटैक के समय इन्हें मेरी जरूरत पड़ती है। चैस्ट स्पेशलिस्ट बड़े बेटे मनु ने कहा। “हां तभी तो मां को छोड़कर अपनी नई-नवेली दुल्हन को लेकर अलग जाकर रहने चले गए थे।” अरुण ने व्यंग्य बाण छोड़ते हुए कहा।

बुढ़ापे में पत्नी के सहारे की जरूरत सोचते हुए शेखर ने कहा—“औरत हमेशा अपने पति का साथ देती है। वह मेरे साथ रहेगी।” उन्हें शिल्पा के संस्कारों पर पूरा भरोसा था। वह यह भी जानते थे कि शिल्पा को उन्होंने कभी भी अपना प्यार नहीं दिया। मन से कभी उसे पत्नी नहीं स्वीकार कर पाए। अपने बाँस के दबाव में उनकी बेटी को पत्नी बनाया था। सुरक्षित होने का सुख शिल्पा को कहां दे पाए थे। उनके उग्र स्वभाव और अनुचित आचरण को फिर भी सदा सहा था उसने।

तीनों के कठोर व्यवहार से शिल्पा की कोमल नारी आहत होकर कहीं दूर छिटक चुकी थी। अब उसके भीतर एक दुर्घर्ष औरत करवट

लेने लगी थी।

“मुझे थोड़ा वक्त चाहिए अपना फैसला लेने के लिए।” शिल्पा ने बस इतना ही कहा।

वह अपने कमरे में गई। पलंग पर जाकर लेट गई। बाहर से शिल्पा खामोश थी पर मन दो टूक हुआ जा रहा था। वह विश्वास ही नहीं कर पा रही थी कि ये वही बेटे हैं जो बचपन लांघ कर किशोरावस्था तक भी मां की गोद में आकर अपनी थकान मिटाते थे। आज कैसे काठ के पुतले लग रहे थे। पति से मिली उपेक्षा और परायेपन के अहसास के पिछले पच्चीस वर्ष चलचित्र की भाँति धूम गए। जब भी मौका मिलता, शेखर उसे अपनाने के अहसान को जतलाए बिना नहीं रहते। पापा कभी समझ ही नहीं पाए कि शेखर की रुचि उनकी बेटी में नहीं उनकी सम्पत्ति में थी। शिल्पा की आँखों से झरना फेटने लगा। जिसके साथ सारा तनाव बह गया।

प्रातः जब उठी तो एक नए फैसले के साथ। वह सजग थी कि कोई उसके चेहरे के भाव न पढ़ ले। उसने मन-ही-मन यह फैसला लिया कि दोर-डंगरों की तरह किसी भी रिश्ते का बोझ वह और नहीं ढोएगी। मानसिक गुलामी का यहीं अंत होगा। अपने अस्तित्व को बिकने नहीं देगी चाहे कोई कितनी भी बोली लगाए। उसने तीनों को बुलाया बिना किसी भूमिका के अपना फैसला सुनाते हुए कहा—

“मैं तुम तीनों में से किसी के साथ भी नहीं चलूंगी। मैं यहीं रहूंगी अपने घर में। डीलर से मेरी बात हो गई है। वह ऊपर की दो मंजिलों के बदले आप तीनों को एक-एक फ्लैट देगा और मुझे कैश देगा जो मेरे गुजर-बसर के लिए बहुत होगा।” आँखों में सारा रुदन पथरा गया। वर्षों से बेआवाज़ पड़े साज़ से निकले सुर से तीनों भीचक्के खड़े रह गए।

मृत्युदंड

विजय एक उच्च पदाधिकारी था। कानून का निर्माता। आज मानवाधिकारों पर महत्वपूर्ण मीटिंग थी, जिसमें देश-विदेश से अनेक प्रतिनिधियों ने भाग लिया। अंतर्राष्ट्रीय-संगठन ने मृत्युदंड शीघ्र ही समाप्त करने का सुझाव दिया। विजय का लंबा भाषण तालियों की गड़गड़ाहट में समाप्त हुआ। मृत्युदंड का खण्डन करने वाले इस महापुरुष की चिन्तनधारा पर सब मुग्ध थे। सभी ने उनकी भूरि-भूरि प्रशंसा की।

शाम को वह घर आए। सुबह का सारा हाल सुनाया। बड़े अभिमान से मानवाधिकारों के रक्षक का मैडल दिखाया। उसे हाथ में लेकर उनकी पत्नी दूसरी तरफ मुंह छिपाकर रो दी। कल ही तो उन्होंने मृत्युदण्ड सुनाया था। पत्नी के गर्भ में कन्या-भ्रूण की परीक्षा के बाद उन्होंने डॉक्टर से कहकर पत्नी का गर्भपात करवा दिया था। पुत्री को दुनिया में अपने नन्हें कदम रखने से पहले ही मृत्युदंड दे दिया था। □

संपर्क : एन.डी. 57, प्रीतमपुरा, दिल्ली-110034

परित्राण का एक मंत्र है

अजयशंकर मिश्र

‘साहित्य के क्षेत्र में खड़ी बोली अथवा जनता की भाषा का काव्य में प्रयोग करके रोचकता लाने का श्रेय मैथिलीशरण जी को ही है। इस प्रकार, कविता को जनजीवन के अधिक निकट लाने का जो प्रयास भारतेन्दु जी की कृतियों से आरंभ हुआ, वह गुप्त जी की कृतियों में देखने को मिलता है।’ (डॉ. राजेन्द्र प्रसाद, पृष्ठ 1) राष्ट्रकवि मैथिलीशरण गुप्त ने अपनी रचनाओं के माध्यम से आलस्यग्रस्त सुप्त मानव मन और मानव समाज को जाग्रत करने का महत्वपूर्ण कार्य किया था। उन्होंने समाज की विभिन्न कुरीतियों पर प्रहार करते हुए समाज सुधारक की भी भूमिका निभाई थी। इसलिए, उनकी कविताएं आज भी प्रासंगिक हैं, जैसे—

परित्राण का एक मंत्र है/ विश्वराज, जो लोकतंत्र है/सब वर्णों का, सब धर्मों का/ जहां एक अधिकार/एक देह के विभिन्न अंग हम/ दुखें-पुखें सब एक संग हम/लगे एक के क्षत-पर सबका स्नेहलेप सौ बार/कहो तुम्हारी जन्मभूमि का है कितना विस्तार। (पृष्ठ 3)

और, ऋषि दधीचि से गांधी जी तक/ मिली हमें जो दीक्षा है/ बंधुजनों, प्रस्तुत हो, उनकी, फिर आ गई परीक्षा है। (पृष्ठ 4)

गेयता और संगीतात्मकता किसी काव्य का वह गण है, जो उसे सर्वकालिक बनाता है, अमरत्व प्रदान करता है। सूर और तुलसी की रचनाएं इसके प्रमाण हैं। यद्यपि, ये दोनों कवि संगीत के महान ज्ञाता थे। स्व. गुप्त जी मूलतः कवि थे, संगीतकार नहीं, लेकिन संगीतात्मकता के गुण उनकी रचनाओं में भी यथेष्ट मात्रा में मिलते हैं। इसीलिए, उनकी रचनाएं विभिन्न मंचों पर कई-कई कठों से निनादित होती रही हैं। संगीत विभूति, विदुषी, डा. सीता विम्व्रों की 16वीं पुस्तक गुप्त जी के काव्य में सांगीतिक तत्वों की खोजबीन पर आधारित है। अपने गहन शोध के आधार पर डा. सीता विम्व्रों ने गुप्त जी को संगीत का महान ज्ञाता सिद्ध किया

है। कुछ उदाहरण देखिए—

मिलाप था दूर अभी धनी का/ विलाप ही था बस का, बनी का।

अपूर्व आलाप वही हमारा। यथा विपंची दिर दार दारा। (पृष्ठ 23)

आलाप स्वर वाद्यों का एक महत्वपूर्ण वादन तत्व है। विपंची एक प्राचीन वीणा का नाम है, और दिर दार दारा आदि तंत्री वाद्यों पर बजने वाले बोलों को कहते हैं। ‘साकेत’ में उन्होंने लिखा है—

ठौर ठौर प्रभातियां होने लगीं। अलसता की ग्लानियां धोने लगीं।

कौन भैरव राग कहता है इसे। श्रुति पुटों से प्राण पीते हैं जिसे। (23) और ‘झापर’ में तो उन्होंने स्वयं को संगीत विशेषज्ञ सिद्ध कर दिया है—

वादी-संवादी स्वर लेकर, वीणा सभी बजाते हैं/पर, प्रतिवादी स्वर भी मेरी, वीणा में बज जाते हैं/बिना विवादी के विनोद क्या, बस प्रयोग सर्वत्र बड़ा/बने भैरवी भी मृदु मधुरा, मेरा मध्यम रहे कड़ा। (पृष्ठ 23)

भैरवी राग में ‘तीव्र मध्यम’ का प्रयोग ‘विवादी’ होने पर भी कितना आकर्षक लगता है, इसे कोई प्रयोगवादी संगीत रसिक ही समझ सकता है।

लेखिका ने सा रे ग म प ध नि और सा नामक आठ अध्यायों में विभक्त इस शोध कृति में कवि के जीवन और काव्यादर्श, ‘परंपरा’ एवं ‘आधुनिकता’ पदों की सैद्धांतिक एवं व्यावहारिक मीमांसा, गुप्त जी के काव्य में परंपरागत एवं आधुनिकतापरक दृष्टि से नादानुसंधान, प्रबंध धातु, प्रबंधांग एवं प्रबंध भेदों की दृष्टि से गुप्त जी के वाङ्मय का अध्ययन, विविध वार्णिक, मात्रिक तथा नवल छंद प्रयोगों की दृष्टि से गुप्त जी के काव्य का अध्ययन, गुप्तजी के

काव्य में उपलब्ध विभिन्न गायन शैलियों का गवेषणामूलक अध्ययन और 43 काव्य रचनाओं की स्वरलिपियां दी हैं जो भैरवी, देस, यमन कल्याण, बागेश्री, मिश्र शिवरंजनी, काफी, हमीर, मिश्र छायाण्ट, जौनपुरी, दरबारी, वसंत, सोहनी, मालकौंस, दुर्गा, वृंदावनी सारंग, भूपाली, अल्लैया बिलावल, पूरिया धनाश्री, तोड़ी, पूरिया, शंकरा, बहार, तिलंग, रागेश्वरी, चंद्रकौंस और गौड़मल्लार आदि जैसे रागों में निबद्ध हैं।

लेखिका ने प्रबंध के 6 तत्वों स्वर, विरुद, पद, तेन, पाट और ताल की तुला पर भी कवि की रचनाओं को तौला है। साथ ही, प्रबंध के विभिन्न भेदों की कसौटी पर भी। साथ में, उन छंदों का भी परिचय दिया है, जिनमें कवि की रचनाएं निबद्ध हैं। जैसे अनुष्टुप छंद का यह उदाहरण—

लंका में प्रिय की वार्ता/सुन के आंजनेय से/तुष्टसीता हमें रखें/प्रेम के साथ श्रेय से। (पृष्ठ 127)

लेखिका ने गुप्त जी की रचनाओं में विभिन्न गायन शैलियों का गवेषणामूलक अध्ययन करते हुए विभिन्न रचनाओं को रेखांकित किया है। जैसे 12 मात्रे के तोटक छंद में निबद्ध इस रचना को सुगमता से 12 माले के चौताल में पिरोकर ध्रुवपद शैली में गाया जा सकता है— खोजो मृत्यु, दिखाओ ओज/ जीवन करे, तुम्हारी खोज। (पृष्ठ 152)

इसी तरह 14 मात्रे के धमार ताल के लिए लेखिका ने निम्न रचना को उपयोगी माना है—

कापे दैत्य दस्यु धर धर/हर हर महादेव हर हर। (पृष्ठ 152)/दस मात्रे के झपताल में निबद्ध सादरा गायन शैली के लिए यह रचना उपयुक्त है—

हा! निशांत आया/तूने जव टेर प्रिये, ‘कांत उठो’ गाया।

राग बहार और ताल त्रिताल के लिए उपयुक्त इस रचना को खयाल शैली के अंतर्गत

रखना चाहती हैं लेखिका—मान छोड़ दे, मान अरी।

कली, अली आया हंसकर ले, यह बेला फिर कहां धरी? (पृष्ठ 154)

ठुमरी गायन शैली के लिए इस गीत को उपयोगी माना गया है—

जितने अधिक रहें अच्छा है/ अपने छोटे छंद/अतुलित जो है उधर अलौकिक/ उसका वह आनंद लूट लो, न विराम।

हाली पर कुछ पंक्तियां देखिए—काली काली कोयल बोली/होली-होली-होली।

हंसकर लाल-लाल हांठो पर/ हरियाली हिल डोली/फूटा यौवन, फाड़ प्रकृति की/पीली-पीली चोली/होली-होली-होली। (पृष्ठ 159)

और, भक्ति चाहे ईश्वर की हो, चाहे महामानवों की, चाहे देश की—उनकी संख्या तो बहुत बड़ी है गुप्त जी की रचनाओं में—जैसे—शुद्ध हरे-सम्बुद्ध हरे/हुआ भुलाने को क्या हमको/तू अविरत करे। कैसे यह विश्वास करें

हम? तेरे रहें, तरे न तरे हम/बढ़ें चलें, बस बढ़ें चलें हम, श्रद्धा भक्ति करें।

यह स्पष्ट है कि कविवर मैथिलीशरण गुप्त ने विभिन्न विषयों पर अलग-अलग तरह की कविताएं लिखीं। इनके लेखन के समय उनके मानस में ध्रुवपद, धमार, खयाल या ठुमरी जैसे भाव नहीं थे। लेकिन उनकी कविताओं को विभिन्न मंचों पर गा चुकीं, उनकी कविताओं पर शोधपरक कार्य करने वाली विदुषी लेखिका डा. सीता बिम्ब्रा ने उनकी कविताओं में संगीत तत्वों को कुछ उसी अंदाज़ में ढूंढ निकाला जैसे कोई वैज्ञानिक पानी में आग ढूँढ लेता है/प्रमाण प्रस्तुत है—दूती, बैठी हूं सजकर मैं/बस अब उनके अंक लगूंगी। उनकी 'वीणा' सी बनकर मैं।'

लेखिका ने गुप्त जी की अनेक रचनाओं को विभिन्न प्रकार के रागों, तालों में निबद्ध करके अपने शोधकार्य की सार्थकता सिद्ध कर दी है। पुस्तक के अंत में गुप्त जी की कविताओं में से 528 'सुभाषित' जैसी सारगर्भित पंक्तियों

का संकलन भी दिया गया है। उदाहरणार्थ प्रस्तुत है 'अनघ' से संकलित एक सुभाषित—'न तन सेवा, न मन सेवा/न जीवन और धन सेवा/मुझे है इष्ट जन सेवा/सदा सच्ची भुवन सेवा।'

साहित्य और संगीतानुरागियों के लिए विशेष रूप से पठनीय है यह पुस्तक।

संगीत के परिप्रेक्ष्य में मैथिलीशरण गुप्त का काव्य : परंपरा और आधुनिकता

लेखिका : सीता बिम्ब्रा, प्रकाशक : राधा पब्लिकेशंस, 4231/1, अंसारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-110002, पृष्ठ : 367, मूल्य : 850 रुपये।

संपर्क : संगीत नायक पं. दरगाही मिश्र संगीत अकादमी, क्यू-68, न्यू पालम विहार, गुड़गांव-1217 (हरियाणा)

पारंपरिक लोक-परंपराओं का उपयोग

ज्योति चौधरी

देश की स्वतंत्रता के बाद, हमारे भविष्य-दृष्टा नेताओं ने हमारी लोकतांत्रिक संस्थाओं और व्यवस्थाओं को स्वरूप दिया और बड़े जतन से इनके सच्चे स्वरूप की रक्षा की—चाहे विधायिकाएं हों, न्यायपालिका हो, साहित्य-संस्कृति की संस्थाएं हों—या फिर कानून-व्यवस्था का तंत्र हो। लेकिन धीरे-धीरे क्षुद्र स्वार्थों और टुच्चे लाभों वाली छोटी दृष्टि के चलते इन संस्थाओं का पतन होने लगा, यह गिरावट सभी क्षेत्रों में नज़र आई। कानून-व्यवस्था के तंत्र में लूट-खसोट तथा राजनीति में वंशवाद, भाई-भतीजावाद और मनचाही विकृत व्याख्याओं का दौर चला।

'राजाजी की भैंस' इस विकृति को नाटक-रूप में प्रस्तुत करने का सफल प्रयत्न है। फेंटेसी के जरिए लेखक ने ऐसी स्थिति का चित्र प्रस्तुत किया है जिसमें भैंस को ही प्रतीकात्मक

सत्ता प्रमुख बना दिया जाता है और सत्ता के दलाल इस प्रतीक के नाम पर मनमाने निर्णय करते हैं। नाटक हमें यह चेतावना है कि स्वार्थ के अंधेपन से होने वाले पतन की कोई सीमा नहीं होती। लेकिन यह निराशा का नाटक नहीं है। घनघोर अंधेरे में भी, इस नाटक में ऐसे पात्र हैं जो जन-चेतना को जगाए रखने के खतरे उठाते हैं। यहां तक कि अंधेरे के सूत्रधारों के अंदर दवा लेकिन उजला पक्ष पूरी तरह मरा नहीं है, सत्ता-तंत्र की प्रतीक भैंस भी पूरी तरह पाशविक नहीं हुई है—ऐसे संकेत मिलते हैं। इस दृष्टि से यह हमारा अंधेरे दौर में उम्मीद का नाटक है।

नाटक में प्रारंभिक वंदना, कथागायन के जरिए पारंपरिक लोक-परंपराओं का उपयोग किया गया है, एक व्यथित नागरिक के स्वप्न के

जरिए कथानक के विद्रूप को उभारा गया है। मंचन और विश्वसनीयता की दृष्टि से, इन साधनों का यह सफल और कल्पनाशील उपयोग है। पात्र-संख्या अवश्य कुछ ज्यादा है।

हिंदी में अभिनेय, मौलिक नाटकों की बड़ी कमी है। इस दृष्टि से लेखक का यह एक सार्थक और महत्वपूर्ण प्रयास है जो समकालीन यथार्थ को शिद्ध से उठाता है और समाधान के लिए सक्रिय होने की प्रेरणा भी देता है।

राजाजी की भैंस

लेखक : दुर्गाविजय सिंह दीप, पांडुलिपि प्रकाशन, दिल्ली-110051, पृष्ठ : 88, सजिल्द, मूल्य : 195 रुपये।

जीवन-जगत की प्रतिछवियां

विमल शर्मा

कवि कर्म न तो मात्र मनोरंजन है और न ही सूचनाधर्मिता, उसे तो उत्तरोत्तर उच्च समाज की कल्पना करनी है, इसके लिए उसे दम्भी-पाखंडी आलोचकों का सहारा या बैसाखियां न ढूंढ़कर उन सबको साथ लेकर चलना चाहिए जिनके लिए वह लिखता है, पाठक को छोड़कर इस लड़ाई में कहां तक सफल हुआ जा सकता है किंतु इस लंबी प्रक्रिया में पाठक प्रायः दूर-दूर तक नज़र नहीं आता हम उसकी कल्पना करते समय फिर किसी दुष्चक्र में फंस जाते हैं कि फलां कवि, संपादक अथवा आलोचक हमारे बारे में क्या राय रखता है। पाठक रचना के आधार पर कवि की ओर आकृष्ट होगा या उसे किसी दम्भी आलोचक के प्रमाण पत्र के आधार पर? इन प्रश्नों को अगर गंभीरतापूर्वक नहीं लेंगे तो न तो कविता का भला होगा न समाज का।

मनुष्य इतिहास के आरंभ से ही अच्छे-बुरे के मध्य संघर्षरत रहा है जिसे हमारी लोक कलाओं, मिथकों और प्रतीकों द्वारा व्यक्त किया गया है, यदि मनुष्य अंतिम विजय की आशा नहीं त्यागता तो वह उसी द्वंद्वात्मक प्रणाली का परिणाम है कि उसके भीतर अच्छाई निरंतर सुदृढ़ होती जाती है किंतु इसके विपरीत साधका से पूर्व सिद्धी की आकांक्षा कवि को भ्रम में डालती है और उसकी अकाल मृत्यु का कारण बनती है।

‘सन्नाटा बुनते हुए’ संग्रह की कविताएं पढ़ते हुए उपरोक्त प्रश्नों के उत्तर सहज रूप से हमारे सामने उजागर होते हैं। जीवन और मृत्यु के शाश्वत प्रश्नों से जूझती ये कविताएं संवेदन के धरातल पर निरंतर पाठक के सुख-दुख को साथ लेकर चलने का प्रयत्न करती हैं—यह सनातन प्रश्न है कि जीवन सत्य है या मृत्यु! और इसका उपयुक्त उत्तर न तो किसी के पास है न किसी ने दिया है।

यदि हम जीवन की स्तुति करते हैं तो पृष्ठभूमि में मृत्यु की छाया हमारे अंग-संग रहती है पर जिजीविषा इतनी स्वस्थ और पष्ट होती है कि यह छाया तत्कालीन समय में तिरोहित हो जाती है, समाप्त नहीं होती। इसलिए जीने के

क्षण अविस्मरणीय हो जाते हैं। इसी प्रकार मृत्यु के अवसाद में डूबा व्यक्ति उस पीड़ा से किसी प्रकार उबरना चाहता है, जो शेष है उसे सहेजना और बचाना चाहता है। ये दोनों अहसास केवल गोस्वामी की कविताओं में शिद्दत के साथ उभर कर आए हैं।

भूमिका में वह लिखता है—2 नवंबर 97 को भाईदूज के दिन मेरी बड़ी बहन अपने ज्येष्ठ पुत्र, पुत्रवधू के कालका (हरियाणा) में एक भयानक हादसे का शिकार हुई। इस दुर्घटना ने मुझे भीतर तक तोड़ दिया। मेरी जीवन पद्धति, मेरी सोच को ही प्रभावित नहीं किया, मेरी कविता को भी प्रभावित किया। यह लिखना शायद मुझे इसलिए भी जरूरी लगा कि प्रस्तुत संग्रह में तत्संबंधी कुछ कविताएं हैं—

‘एक चेहरा लम्बूतरा’ कविता की ये पंक्तियां—‘कामरेड सीताराम/इधर बतियाने लगा है/मुकद्दर के बारे में/शायद खो चुका है/वह अपनी सूझ-बूझ/ताबूत ढोते-ढोते/छिल गए हैं उसके कंधे।

ऐसे अवसरों पर न तो गीता का तत्वज्ञान काम आता है, न द्वंद्वात्मक भौतिकवाद, यदि काम आ सकता है तो वह सच्ची सहानुभूति के दो बोल जो उठने, उठकर चलने की प्रेरणा देते हैं, पर निरंतर संवेदनहीन होते लोगों के पास इन औपचारिकताओं के लिए भी समय शायद नहीं है, वे हर काम हानि-लाभ के दायरे में करते हैं ‘सनी मुखर्जी के नाम’ शीर्षक कविता की ये पंक्तियां द्रष्टव्य हैं—

मुझे ऐसा क्यों लगता है कि/यदि वे घड़ी दो घड़ी/आकर सांत्वना देते/तो क्या कुछ नहीं हो सकता था मेरे साथ/शायद फिर से तैयार हो जाते/उनके साथ सितार बजाने को/मेरे हाथ।

गहन अवसाद के इन अनुभवों के विपरीत ‘एक आदम कद सपना’ जो कवि बेटे के सोलहवें जन्मदिन पर देखता है—

“उसके सामने आकार लेता/एक भरा पूरा सपना/सपना जो बरसों से/पुतलियों और

पलकों के मध्य/परवान चढ़ रहा था।”

पत्नी के पचपनवें जन्मदिन पर कविता ‘कस्तूरीगंध’ की ये पंक्तियां—“बावजूद क्षेण होती विलई के/मैं पढ़ पा रहा हूं तुम्हारे पोपले चेहरे पर लिखी/अपनी ताजा कविता।

बेटी के 27 वें जन्मदिन पर लिखी कविता ‘कनकलता’ की ये पंक्तियां उस पिता के दायित्व बोध को दर्शाती हैं जो निरंतर उसके सफल, सुखद भविष्य की कामना के लिए निरंतर संघर्ष करता है।

परिवार की जो कल्पना हमारे साहित्य में निरंतर मिलती है वे परिवार पुस्तकों तक सीमित हो गए हैं जिन्हें कोई देखता नहीं, पढ़ता नहीं। उत्तर आधुनिकता या वैश्वीकरण के प्रभाव हमारे परिवारों पर भी पड़े हैं, होने न होने का द्वंद शक्तियां निरंतर बढ़ा है और विरोध की शक्तियां निरंतर क्षीण हुई है। यह क्रूर समय भी संकलित कविताओं में यहां-वहां झलकता है। संग्रह में तत्संबंधी अनेक सशक्त कविताएं हैं किंतु ‘कुरुक्षेत्र’ संग्रह की कतिपय बड़ी कविता आकार-प्रकार, भाषा-शैली एवं कथ्य की दृष्टि से—में एक महाकाव्यात्मक आख्यान पढ़ने को मिलता है।

कवि का पिछला कविता-संग्रह ‘उसकी मां’ डेढ़ दशक पूर्व प्रकाशित हुआ था, उसकी शीर्षक कविता भी वर्षों तक चर्चा के केंद्र में रही। विभाजन की त्रासदी को झेलनी एक अधेड़ औरत का संघर्ष निराला की ‘तोड़ती पत्थर’ की उस स्त्री की याद दिलाता है ‘जो मार खा रोई नहीं’ इस कविता का अनेक भाषाओं में अनुवाद हुआ।

संकलित 4। कविताओं के इस सशक्त-सार्थक एवं सुबोध कविता-संग्रह का पाठक स्वागत करेंगे, ऐसा विश्वास इन कविताओं को पढ़ने के बाद बनता ही है।

सन्नाटा बुनते हुए (कविता-संग्रह)
केवल गोस्वामी, नेहा प्रकाशन, 295 बैक इन्क्लेव लक्ष्मी नगर, दिल्ली-92, पृष्ठ 106, मूल्य : 175 रुपये।

हरियाणा के लोकगीतों का दस्तावेज़

रामफल चहल

किताबों की दुनिया

1. हिंदी गुज़ल दुष्यंत के बाद, ज्ञानप्रकाश विवेक, अयन प्रकाशन, महारौली, दिल्ली, सजिल्द, पृ. 251, मूल्य : 400 रुपये
2. कैसे कहूं, (कहानी-संग्रह), डॉ. वेद प्रकाश पाण्डेय, सेवक प्रकाशन, वाराणसी, पेपरबैक, पृ. 112, मूल्य : 100 रुपये
3. लैण्ड्स एंड (उपन्यास), निर्मला सिंह, श्वेता बुक एजेंसी, पिलानी (राजस्थान), सजिल्द, पृ. 112, मूल्य : 200 रुपये
4. सुबह की पलकों पर (कविता-संग्रह), शोभना मित्तल, सजग प्रकाशन, दिल्ली, पेपरबैक, पृ. 123, मूल्य : 120 रुपये
5. भारतीय पत्रकारिता : नए क्षितिज, सतीश शर्मा 'जाफ़राबादी', श्री नटराज प्रकाशन, ए-507/12, साउथ गामड़ी एक्सटेंशन, दिल्ली-110053, सजिल्द, पृ. 576, मूल्य : 127 रुपये
6. विष्णु प्रभाकर (रचना संसार), अतुल कुमार, विष्णु प्रभाकर प्रतिष्ठान (रजि.), ए-249, सेक्टर 46, नोएडा-201303, पेपरबैक, पृ. 32, मूल्य : 25 रुपये
7. राजाराम सिंह की प्रतिनिधि कविताएं, सं. पंकज गौतम, युगांतर प्रकाशन, दिल्ली, सजिल्द, पृ. 102, मूल्य : 200 रुपये।
8. अब आप अली अनवर से (कहानी-संग्रह), संजीव ठाकुर, इंद्रप्रस्थ प्रकाशन, सजिल्द, पृ. 112, मूल्य : 200 रुपये।
9. हिंदी स्वराज : एक अनुशीलन, लेखक त्रिदीप सुहद, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, सजिल्द, पृ. 116, मूल्य : 250 रुपये।
10. मुक्तिबोध-साहित्य नई प्रवृत्तियां (आलोचना), दूधनाथ सिंह, सजिल्द, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली, पृ. 144, मूल्य : 350 रुपये।

‘हरियाणा के लोकगीत’ भाग-II नामक पुस्तक ‘हरियाणा ग्रंथ अकादमी’ पंचकूला द्वारा हाल ही में प्रकाशित की गई है जिसका संपादन लोक संस्कृति के मर्मज्ञ ओमप्रकाश कादयान द्वारा किया गया है। वैसे तो सन् 1970 में भाषा विभाग द्वारा प्रकाशित पुस्तक जिसके संपादक डॉ. साधुराम शारदा व सह संपादक डा. नानकचंद शर्मा व सोमदत्त वंसल हैं ‘हरियाणा के लोकगीत’ नाम से ही प्रकाशित हो चुकी थी जिसे हरियाणा साहित्य अकादमी द्वारा पुनर्प्रकाशित किया गया था। लगभग 350 पृष्ठों की इस पुस्तक को अब तक हरियाणा की सबसे बड़े आकार की पुस्तक माना जाता था। इस पुस्तक में अधिकतर मध्य एवं उत्तरी हरियाणा के लोकगीतों को संकलित किया गया था और ऐसा प्रतीत होता था कि इस पुस्तक में संग्रहित लोकगीतों के अतिरिक्त शायद ही कोई लोकगीत शेष बचा हो जिसे संकलित न किया गया हो। ओमप्रकाश कादयान द्वारा संपादित पुस्तक ‘हरियाणा के लोकगीत’ भाग-II के अवलोकन उपरांत ऐसा लगा कि पश्चिमी हरियाणा विशेषकर जिला हिसार, फतेहाबाद व सिरसा जिसमें बिश्नोई मतावलंबियों की बाहुलता है, इनके गीतों पर अभी तक लोक साहित्यकारों की दृष्टि पूर्णतः नहीं पड़ी थी और इसी कारण ‘हरियाणा के लोकगीत’ भाग-II नामक पुस्तक का महत्त्व बढ़ जाता है क्योंकि एक-एक गीत का चुनाव इस दृष्टि से करना था कि कहीं गीतों की पुनरावृत्ति न हो जाए।

इस प्रकार के प्रयोजन की पूर्ति के लिए लेखक का लोक साहित्य में रुझान एवं गहरी समझ होने के साथ-साथ यायावर होना आवश्यक होता है। श्री कादयान एक सफल छायाकार और चित्रकार होने के साथ-साथ बाल गीतकार, कथाकार हैं एवं हरियाणा की सांस्कृतिक विरासत पर कई पुस्तकें लिख चुके हैं। श्री कादयान एक यायावर संस्कृति समालोचक एवं शोधकर्ता भी हैं जिन्होंने हरियाणा भर के गांवों में घर-घर जाकर इस पुस्तक में संकलित गीतों को एकत्र करके उनका वर्गीकरण एवं विश्लेषण किया है। कुल 392 पृष्ठों में लोकगीतों के अतिरिक्त अंतिम पृष्ठों पर हरियाणवी संस्कृति की झलक को दर्शाने हेतु कुल 44 चित्रों की चित्रावली भी दी गई है जो 12 पृष्ठों में समाहित है।

प्रथम अध्याय ‘संस्कार गीत’ में जन्म, विवाह और मृत्यु संस्कार से संबंधित गीत संकलित किए गए हैं। अध्याय दो में शिव, गूगा, हनुमान, विभिन्न देवियों, राम एवं कृष्ण के जीवन चरित पर आधारित गीतों के साथ सांझी गीतों को भी संकलित किया गया है। तृतीय अध्याय में सावन व तीज के गीत व चतुर्थ में कार्तिक स्नान व गंगा स्नान के गीत हैं। पंचम भाग में फागुण व दुल्हनडी के गीतों व छठे में नृत्यगीतों को स्थान दिया गया है। अध्याय सात में देशभक्ति व राष्ट्रीय चेतना से ओतप्रोत राष्ट्र नायकों महात्मा गांधी, सुभाषचंद्र बोस, सरदार भगत सिंह, चौ. छोटूराम के गीतों का संकलन है। आठवां अध्याय प्रेम और विरह से ओतप्रोत गीतों का दस्तावेज़ है तथा नौवां व अंतिम खंड हरियाणवी संस्कृति के अन्य पहलुओं को उजागर करते पनघट, चरखा-गीत व लोरियों से युक्त है।

पुस्तक की विशेषता यह है कि सभी प्रकार के गीतों के खंड या अध्याय से पूर्व उन लोकगीतों की संक्षिप्त परंतु सारगर्भित व्याख्या दी गई है जो इन लोकगीतों को एवं इनमें निहित सूक्ष्म भावों को समझने में अत्यंत सहायोगी सिद्ध होगी। कुछ टाइप संबंधी त्रुटियों को छोड़कर पुस्तक आकर्षक आवरण पृष्ठ, उच्चकोटि के लोक साहित्य एवं मार्मिक मनोभावों से युक्त ऐसे लोकगीतों का दस्तावेज़ है जो केवल शेष या अवशेष नहीं अपितु विशेष होते हुए भी ‘हरियाणा के लोकगीत’ भाग-I में स्थान नहीं पा सके थे।

हरियाणा ग्रंथ अकादमी के माध्यम से ओमप्रकाश कादयान का यह प्रयास लोक साहित्य के पाठकों एवं शोधकर्ताओं के लिए एक नया अध्याय होगा।

हरियाणा के लोकगीत भाग-II

संपादक : ओमप्रकाश कादयान, प्रकाशक : हरियाणा ग्रंथ अकादमी, अकादमी भवन, 16, सेक्टर-14, पंचकूला (हरियाणा)। पृष्ठ : 392, मूल्य : 200 रुपये।

संपर्क : 111, विकास नगर, रोहतक (हरियाणा)

घटनाओं की अभिव्यक्ति का नायाब अंदाज़

सीमा ओझा

अकस्मात् एक दिन एक संपादक अपने मित्र से एक पुस्तक थामी मैंने।

अरे वाह! यह पुस्तक तो एक अद्भुत पिटारा है हर उस महसूस किए क्षणों का जो जाने-अनजाने सभी के साथ घटता है पर हम कुछ घटनाओं के बारे में बक-बकाकर शांत हो जाते हैं। लेकिन निधीश त्यागी ने तो अपने अब तक के अनुभव जनित घटनाओं को एक आकार दिया है, इसलिए मैंने प्रारंभ में अकस्मात् का जिक्र किया क्योंकि जिन घटनाओं को कभी सोचा कि शब्द देना है पर वह टल रही थी, उसे तुमने एक आकार दिया था।

अब भी, तमन्ना की तलाश में भटकते 'तमन्ना तुम अब कहाँ हो' के आकर्षक शीर्षक में। कई लोगों ने पुस्तक देखी और नज़रें बचाकर खोला शीर्षक पृष्ठ 35 पर इस गल्प में रोचकता की सादगी अद्भुत।

पठन-पाठन से जी चुराने वाले इस समय में बी.बी.सी. में हिंदी संपादक के पद पर कार्यरत निधीश त्यागी की पुस्तक झन्नाटेदार घटनी में पड़ी वह तीखी हरी मिर्च है, जो न केवल आंख-नाक से नीर वर्षा करेगी अपितु बंद दिलों में अपनी यादों को ताजा करने के लिए अटका दिया गया एक गुटका है। कई

कहानियां आम जीवन के खटूटे-मीठे अचारों की तरह पढ़ने के बाद भी शायद थोड़ा और खा लिया जाए, के अनुभवों की तरह हैं। पहली कहानी एक पति की उस बेवफाई की दास्तां पर आधारित है जो एक अच्छा शौहर ही नहीं, एक अच्छा पिता भी है। वह आतंकवादी हमले में मारा जाता है। पत्नी विधवा होते हुए भी अचंभित है क्योंकि वह स्वयं भी मरने वालों की सूची में शामिल है।

कहानियों को पढ़ते हुए कई बार हैरानी होती है एक जगह निधीश पाब्लो नेरूदा पर लिखता है तो दूसरी जगह उसकी लेखनी टी बेस के साथ गुमशुदा दोस्त का पता ढूंढती हुई नैय्यरा नूर को प्रेम-पत्र लिखने लगती है।

प्रेम-पत्र लिखने में लेखक वहीं पहुंचता है जहां भावुकता का पुट लिए किशोर से युवावस्था तक पहुंचता वह युवक है, जो अपनी मध्य उम्र में अच्छी नौकरी स्वस्थ पारिवारिक जीवन में भी उस स्मृति की अर्गला बार-बार खोलता है जहां उसने पहली बार टटकी अमिया का स्वाद चखा था। अपने अनुभवों को शब्दों में गूँथते लेखक की लेखनी दिल लगाती है एक दिलफरेब से और यह दिलफरेब होता है एक शहर जिसका नाम है—दिल्ली।

अनुभवों की इन कथाओं में कई जगह भटकाव भी है। यह भंडाव कथाकार द्वारा प्रश्नों के उत्तर पाने का नजरिया भी हो सकता है। कई बार इन कथाओं को पढ़कर हमारे आपके साथ, आस-पास घटी घटनाओं की अभिव्यक्ति का यह नायाब अंदाज़, बतियाने की शैली में भाषा का प्रयोग और वह भी एकदम सहज टटकेपन के साथ अलहड़ता लिए। पृष्ठ 96 पर "अकेला होना शायद ये होता है।" कथा के दूसरे अनुच्छेद में लेखक के किसी पुस्तक के संदर्भ में लिखी यह लाइन—

'इस किताब में मजेदार बात है कि दो अजनबी एयरपोर्ट पर मिलते हैं' ठीक इसी तरह कई बिछुड़े लोग, कई दबी स्मृतियां इस पुस्तक को पढ़ते जीवंत हो उठती हैं। एक पंक्ति में दिल तोड़ने वाली 69 कहानियों में से कई तो अंदर तक झकझोर जाती हैं। समस्त रसों के परिपाक से युक्त यह कथाएं इतिहास बन चुकी तमन्ना की तलाश में पढ़ने से भाग रहे पाठकों के लिए एक सुरुचिपूर्ण कथा संग्रह है।

तमन्ना तुम अब कहाँ हो

लेखक : निधीश त्यागी, प्रकाशक : पेंगुइन बुक्स, नई दिल्ली, पृष्ठ : 188, मूल्य : 150 रुपये।

सांस्कृतिक अस्मिता का आईना है ढोल

लीना

कर्नाटक के पूर्व मुख्यमंत्री एम. वीरप्पा मोइली का यह उपन्यास 'ढोल' उनके समाज की वास्तविकता से गहरे जुड़े होने का परिचायक है, क्योंकि यह उपन्यास कर्नाटक के तटीय इलाके में रहने वाले सीमांत समुदाय 'पम्बद' के जीवन की जटिल सांस्कृतिक प्रक्रिया 'भूताराधना' की गहरी छानबीन तो करता ही है, उनके शोषण और समुदाय में स्त्री विमर्श को भी जोरदार

तरीके से सामने रखता है। वस्तुतः 'ढोल' कन्नड़ में उनके लिखे उपन्यास 'तेम्बरे' का हिंदी अनुवाद है।

यह उपन्यास 'एज ऑफ़ टाइम' नाम से अंग्रेजी में भी छप चुका है। 'तेम्बरे' का हिंदी अनुवाद है। यह उपन्यास 'एज ऑफ़ टाइम' नाम से अंग्रेजी में भी छप चुका है। 'तेम्बरे' कन्नड़ साहित्य का एक महत्वपूर्ण उपन्यास है।

हिंदी में अनुवाद ढोल वी. आर. नारायण ने किया है।

प्रस्तुत उपन्यास में दो पम्बद भाइयों के माध्यम से पम्बदों द्वारा की जाने वाली भूताराधना जैसी अद्भुत और पारंपरिक वृत्ति को दिखाने का प्रयास किया गया है। जहां एक भाई इस परंपरा के खिलाफ विद्रोह करता है, तो दूसरा इस पद्धति को पुनर्स्थापित करने में सच्चे मन

से जुट जाता है।

यह उपन्यास अपनी संस्कृति को बचाए रखने वालों की सांस्कृतिक अस्मिता का आड़ बना तो है ही, परंतु यह उन पर भी प्रहार करता है जो हिंसा के माध्यम से न्याय पाने के लिए संघर्ष करते रहे हैं।

सांस्कृतिक पहचान, भूताराधना—इन सबके बीच 'ढोल' वंचितों-शोषितों की आवाज भी जमीनी तौर पर बड़े तेवर के साथ सामने रखता है! कि कैसे इन सामाजिक-सांस्कृतिक नियमों-पूजन आदि में भी उनका शोषण होता है। उपन्यास में लेखक नायक लकन की स्मृतियों के माध्यम से कहते हैं—

“...न्याय की मृगमरीचिका के पीछे पड़े गरीब व भोले वर्ग की कहीं मुक्ति न थी। न लौकिक न अलौकिक—सभी अमीरों की तरफ, गरीबों की तरफ आदमी को दूर भगवान भी नहीं। भूत का वेश धारण करने वाले, नाचने वाले नीची जाति के और नचाने वाले ऊंची जाति के।

...लकन को उसके पिताजी लोक कथाओं के नायकों की कहानियां सुनाया करता था। उनमें और इस शोषण में कोई अंतर नहीं दिखता था।”

लेकिन लेखक नायक लकन जो स्वयं सरकारी अधिकारी है, आरक्षण से पद पाकर, उनके लिए कुछ न करने वालों पर भी सवाल उठाते हैं। उपन्यास में लकन कहता है—

...आज की व्यवस्था में केवल कुछ लोग ही अधिकारी, विधायक, मंत्री और न्यायाधीश बनकर अपने-अपने संबंधियों की परिस्थिति सुधार सकते हैं। परंतु हम पर विश्वास रखने वाले समाज को हम बहुत दूर छोड़ आए हैं। वे अब भी सामाजिक न्याय के लिए, अन्न के लिए, निवास के लिए, प्राथमिक मानवीय अधिकारों के लिए, सम्मानपूर्वक जीने के लिए छटपटा रहे हैं।...”

इन वाक्यों में लेखक सामाजिक एकजुटता के प्रति भी प्रतिबद्ध नजर आते हैं। उपन्यास स्त्री-विमर्श को भी सहजता, लेकिन गंभीरता से भी बीच-बीच में उठाता चलता है।

भूताराधना करने वाले पिजन की पत्नी मेरे जो कि अराधना के दौरान ढोल (तेम्बरे)

बजाया करती थी, के माध्यम से लेखक कहते हैं—

“...स्त्री के समस्त कौशल सामान्य मानकर, उसके समस्त काम को ताक पर रख दिया जाता है। यही नहीं उसके काम को या उसकी देन को अप्रधान मानकर नजरअंदाज किया जाता है।”

कहानी में आगे उसकी पुत्री व लकन की बहन तोमु के माध्यम से भी लेखक स्त्री सशक्तिकरण को उठाते हैं। तोमु न सिर्फ अपने पति के अत्याचारों को न सहकर उसके खिलाफ आवाज उठाती है बल्कि उच्च शिक्षा ग्रहण कर वकील बनती है और अपने समुदाय और वंचितों को हक दिलाने के लिए लड़ती भी है।

उपन्यास की सबसे बड़ी बात है—लेखक भूताराधना करने वाले ऐताहो या इसका विरोध करने वाले लकन हो, या फिर स्त्री विमर्श को उठाने वाली तोमु—सभी के माध्यम से सत्य और हर परिस्थितियों में सदा सत्य की राह चलने की बात कहता है। ढोल के माध्यम से जीवन के विभिन्न समस्त स्वरों की बात कहता है। ...”

पडियूरू के तेम्बरे के स्वर गांव पार करके, नगर, बाजार लांघकर लहराते हुए गुंजते हैं। उसका मूल कुछ और है उससे निकलने वाली

तरंगें ही कुछ और हैं। नाद ही कुछ और है, लय भी कुछ और ही है। उसमें कौन-सा पुरुष स्वर है, स्त्री स्वर कौन-सा है और बच्चों का स्वर कौन है, यह पहचान पाना कठिन है। एक ही तेम्बरे में कितने स्वर हैं।

उसमें भूत की संधियां हैं, झांझर की झंकार हैं, अनुशासन का सवर है, नन्हे कदमों की आहट है, नृत्य की पदलय है, शिक्षा पाने की दौड़ है, गीत का नाद है, क्रोध है, ममता है। इस प्रकार के सैकड़ों स्वर निकलते हैं। ...सब जगह फैल गया है—यह तेम्बरे।”

बी. आर. नारायण ने भी उपन्यास का हिंदी में अनुवाद बखूबी किया है। भाषा व शैली के बीच कहीं से भी यह उपन्यास की मूल भावना से अलग जाती नहीं दिखती है।

ढोल

लेखक : एम. वीरप्पा मोइली, अनुवादक : बी. आर. नारायण, प्रकाशक : राजकमल प्रकाशन, पृष्ठ : 156, मूल्य : 200 रुपये।

संपर्क : 303, दिगम्बर प्लेस, डाक्टर्स कालोनी, लोहियानगर, कंकड़बाग, पटना (बिहार)

कृपया ध्यान दें

चंदा भेजने और चंदे के बारे में पूछताछ के लिए अथवा पत्रिका प्राप्त न होने की स्थिति में कृपया वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक से सीधे संपर्क करें।

पता :

वितरण एवं विज्ञापन व्यवस्थापक

पूर्वी ब्लाक-4, लेवल-7,

रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

फोन : 26100207 / 26175516

ई-मेल : pdjucir_jcm@yahoo.co.in

अलग होता है लोक समाज का इतिहास

“लोक समाज के इतिहास पर बात करना इतिहास का एक महत्वपूर्ण कार्य और दायित्व है। इतिहास कि जो अनंत धाराएं होती हैं, उनका गहरा संबंध मानव समाज की उन ऐतिहासिक परंपराओं से होता है जिनसे समाज बनता है। उसमें अंधविश्वास भी है और यथार्थ भी। वैज्ञानिक विचारधाराएं लोक में मौजूद सच्ची धारणाओं को समझने में मदद कराती हैं।” ये बातें पिछले दिनों बक्सर (बिहार) प्रखंड के अहिरौली गांव में रंगश्री, दिल्ली और प्रतिश्रुति, बक्सर द्वारा इतिहास और लोकसमाज पर आयोजित एक कार्यक्रम में प्रसिद्ध राजनीतिक-चिंतक एवं राज्यसभा के पूर्व सदस्य श्री नागेन्द्र नाथ ओझा ने कही। इस अवसर पर पहला रामायण चौबै स्मृति ग्रामीण लोक व्याख्यान देते हुए इतिहासकार दीपक राय ने कहा कि “जहां मुख्य इतिहास चुक जाता है, वहां लोक में मौजूद चेतनाएं हमारी मदद करना शुरू कर देती हैं।” इतिहास और लोक समाज पर केंद्रित ग्रामीण सम्मेलन के प्रारंभ में चर्चित लेखक देवेन्द्र चौबे ने कहा कि “आज भी मुख्यधारा के इतिहास में समाज का वह इतिहास अनुपस्थित है जो गांवों और कस्बों में बिखरा है। लोक समाज का इतिहास उस अधूरे इतिहास को पूरा करने में मदद करता है, जिसे इतिहासकार महत्वहीन मानकर छोड़ देते हैं।”

साहित्य अकादमी पुरस्कार

गुजराती कवि चीनू मोदी को वर्ष 2013 के साहित्य अकादमी पुरस्कार के लिए चुना गया है। उन्हें यह पुरस्कार काव्य-संग्रह ‘खारा जारा’ के लिए दिया गया है।

फ्रांसीसी सम्मान

रंगमंच समूह ‘चिंगारी’ के संस्थापक और भारतीय सिनेमा के अभिनेता-निर्देशक राहुल वोहरा को सिनेमा और रंगमंच में उनके योगदान के लिए फ्रांस सरकार ने ‘शेवलियर दस आर्ट्स ए दस लेटर्स’ सम्मान से सम्मानित किया।

विदेशी कलाकारों द्वारा गुज़ल गायकी

पिछले दिनों लोक कला मंच के वासुकी ऑडिटोरियम में ‘शाम-ए-गुज़ल’ का आयोजन हुआ। इस कार्यक्रम में अफगानिस्तान के गुज़ल गायक शाह महमूद नौरोजी और कनाडा के देव बंसराज रामकिशन सम्मिलित हुए। शाह महमूद नौरोजी का मानना है कि उनके वतन का संगीत ढाई-तीन सौ साल पुराना है। उनके यहां भी राग भोपाली, राग भैरवी और खमाज शादी-ब्याह और अन्य विशेष अवसरों पर गाया जाता है। उन्होंने इस समारोह में राग भैरवी में शेख शाहजी शेरजी के कलाम और राग बिलावल में उस्ताद मोहम्मद हुसैन की रचना को अपनी आवाज़ दी।

कनाडा से आए गुज़ल गायक देव बंसराज रामकिशन ने कई लोकप्रिय गुज़ल गाया जिसमें अनूप जलोटा, जगजीत सिंह की गुज़लों के साथ-साथ अमीर खुसरो की रचना भी गाई। इस समारोह का आयोजन सौरंग संगीत सोसायटी ने किया था।

प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार

पिछले दिनों राष्ट्रपति श्री प्रणव मुखर्जी द्वारा 13 भारतवंशियों को इस वर्ष का प्रवासी भारतीय सम्मान पुरस्कार दिया गया। यह पुरस्कार 12 वें प्रवासी भारतीय दिवस के समापन समारोह के अवसर पर दिया गया। महात्मा गांधी की पौत्री इला गांधी को सार्वजनिक सेवा के क्षेत्र में योगदान और भारत-दक्षिण अफ्रीका के संबंधों को मजबूत बनाने के लिए दिया गया।

लेखकों से अनुरोध

(1) ‘आजकल’ साहित्य और संस्कृति की मासिक पत्रिका है। इसमें साहित्य, संस्कृति के साथ-साथ कला, इतिहास एवं लोक जीवन से संबंधित रचनाएं-आलेख प्रकाशित किए जाते हैं। लेखकों से अनुरोध है कि प्रकाशन हेतु पत्रिका की श्रेणी के अनुसार ही रचनाएं भेजें।

(2) रचनाएं भेजते समय रचना की प्रति अपने पास अवश्य रखें। सामान्यतः रचनाएं वापस नहीं भेजी जातीं। रचना की वापसी के लिए यथाउचित मूल्य के टिकट और पता लिखा लिफाफा भेजें। प्राप्ति की सूचना, स्वीकृति-अस्वीकृति के लिए पोस्टकार्ड लगा सकते हैं। रचना के संबंध में फोन पर जानकारी देना संभव नहीं है।

(3) भारतीय और विदेशी भाषाओं से अनुवादित रचना के साथ रचनाकार की अनुमति, मूल रचना का शीर्षक-प्रकाशन वर्ष और रचनाकार एवं अनुवादक का परिचय अवश्य भेजें।

(4) ई-मेल से भेजी जाने वाली रचनाएं Microsoft Word में Shiva-Medium और Kruti Dev Font 010 में टाइप करके ई-मेल : ajkalhindi@gmail.com पर भेजी जा सकती हैं। हस्तलिखित रचनाओं का भी स्वागत है।

(5) संपादकीय पत्र व्यवहार का पता है :

संपादक (आजकल)

प्रकाशन विभाग

कमरा नं. 120, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स

लोदी रोड, नई दिल्ली-110003

फोन : 011-24362915

शब्द न जाने कहां खो गए

सोच रहा था
लिख दूँ
तुम पर कविता
पर मेरे शब्द
न जाने कहां खो गए ...
जब लिखना चाहा
तुम्हारी आंखों पर
तो झील की गहराई भी कम लगी ...
और लबों पर हंसी
ओस की बूंदों से भी नम लगी ...
तुम्हारे चेहरे को देखकर
मैं कोई उपमा नहीं दे पाया
और अलंकार नई परिभाषा
खोजने चले गए ...
मेरी कविता के एक-एक शब्द
तुम्हारे सौंदर्य से
छले गए ...
सोच रहा था
लिख दूँ
तुम पर कविता
पर मेरे शब्द न जाने कहां खो गए ...

लकीरें

मुद्दतों बाद
आज फिर
इन आड़ी-टेढ़ी लकीरों से
कोई तस्वीर बनी है ...
वरना
जिंदगी के समानांतर चलते-चलते
हम तो
भूल गए थे शक्लें बनाना ...

संवेदनाएं

बड़ा मुश्किल है
कोरे कागज़ पर
अपनी संवेदनाओं को उकेरना
अपनी खुशियों को
फूलों से परे कोई नाम देना
और अनगिनत जज़्बातों को
एक खूबसूरत सी पहचान देना
और
उससे भी मुश्किल है
भीगे हुए मौसम में
धूप सी खुशी बिखेरना
प्रेम के रहस्य में
जीवन के हास्य में ...
प्रकृति की लीलाओं में
बारिश और महिलाओं में ...
आसान नहीं कोई सामंजस्य उभारना
बड़ा मुश्किल है
कोरे कागज़ पर
अपनी संवेदनाओं को उकेरना!

संपर्क : म. नं. 1296, सेक्टर-14, हिसार-125001
(हरियाणा)

एक

भीड़ को देखकर खुश हुए,
सूनी बस्ती में घर खुश हुए।
फोन पर बात चलती रही,
हम इधर, वो उधर खुश हुए।
नीले आकाश छूने चले,
जब भी पंछी के 'पर' खुश हुए।
बंटते देखे हैं हमने इनाम,
'शाह आलम' अगर खुश हुए।
प्राप्त करते ही एकांत को,
वर-वधू रात भर खुश हुए।
उस कठिन लक्ष्य को बेध कर,
भील के साथ शर खुश हुए।
कुछ अलौकिक-सा लगने लगा,
जब भी गायक के स्वर खुश हुए।

दो

प्रश्न पूछ तो उत्तर मिले,
यूं भी, संवाद को स्वर मिले!
एक-दूजे में घुल-मिल गए,
जब भी जल और शक्कर मिले।
दोनों हाथों से ताली बजी,
दिल के रिश्ते परस्पर मिले!
राजनेता बहुत खुश हुए,
जब बटेरों से तीतर मिले।
दोस्त नाराज़ था...इसलिए,
हम स्वयं उससे जाकर मिले।
आदमी की जरूरत थी जब,
उस जगह भी पर्यंवर मिले।
जल में रहते हुए भी कमल,
उम्र भर, जल से ऊपर मिले।

संपर्क : 108, त्रिलोचन टावर, संगम सिनेमा के
सामने, गुरुबक्श की तलैया, स्टेशन रोड,
भोपाल-462001 (म.प्र.)

डाक तार पंजीयन सं. डीएल (एस)-05/3222/2012-14 बिना पूर्व भुगतान के साथ आर.एम.एस. दिल्ली में पोस्ट करने के लिए लाइसेंस U (DN)49/2012-1

Postal Regn. No. DL(S)-05/3222/2012-14

Licenced U (DN) 49/2012-14 to post without pre-payment at RMS Delhi

दिल्ली डाक

Delhi Postal

आर एन आई 701/57

RNI 701/57

वार्षिक मूल्य : ₹100.00



प्रकाशक व मुद्रक : ईरा जोशी, अपर महानिदेशक, प्रकाशन विभाग के लिए अरिहंत ऑफसेट, नई दिल्ली-110058 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोदी रोड, नई दिल्ली-110003 से प्रकाशित।

संपादक : कैलाश दहिया